अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी का कथा साहित्य : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

ANAMIKA, ALKA SARAOGI AUR MAHUA MAJI KA KATHA SAHITYA : EK VISHLESHNATMAK ADHYAYAN

Thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

for the award of the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in

HINDI

By

SAFEENA S.A.

सफीना एस.ए.

Prof. K. VANAJA
Head of the Department

Dr. K. AJITHA
(Associate Professor)
Supervising Teacher

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi-682 022

FEBRUARY - 2015

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled **"ANAMIKA, ALKA SARAOGI AUR MAHUA MAJI KA KATHA SAHITYA : EK VISHLESHNATMAK ADHYAYAN"** is the outcome of the original work done by me, and that the work did not form part of any dissertation submitted for the award of any degree, diploma, associateship, or any other title or recognition from any University / Institutiton.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi-22.

SAFEENA S.A
Research Scholar

DEPARTMENT OF HINDI

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"ANAMIKA, ALKA SARAOGI AUR MAHUA MAJI KA KATHA SAHITYA : EK VISHLESHNATMAK ADHYAYAN"** is a bonafide record of research work carried by **SAFEENA S.A** under my supervision for Ph.D (Doctor Of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the Doctoral committee of the candidate has been incorporated in the thesis.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi-22

Dr. K. AJITHA
Supervising Teacher

पुरोवाक्

साहित्य में इतनी क्षमता अवश्य होती है कि वह सवाल और उसका समाधान दोनों को प्रस्तुत कर सकें। जिस साहित्य में कोई सवाल उठ खड़े हुए न हो, वहाँ समाधान का कोई महत्व नहीं होता। साहित्य अपने केन्द्र में मनुष्य को रखते हुए सामाजिक यथार्थ को दरशाता है। स्त्री की समस्या वर्तमान युग की ज्वलंत समस्याओं में से एक है। समाज में हमेशा उसे दोयम दर्जा ही प्राप्त हुआ है। भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् समाज में स्त्री घर के चार दीवारों से मुक्त तो हुई लेकिन इस वर्तमान दौर में भी नारी शोषण का शिकार होती जा रही है। पारिवारिक विघटन, तलाक और बलात्कार जैसे हीनतम प्रवृत्ति आज भी यहाँ जारी है। यानी स्त्री-विकास की दिशाएँ वास्तव में अब भी बाकी हैं।

कथा साहित्य का महिला लेखन सन्दर्भ अपने आप में नया प्रयास नहीं है। उसकी एक लम्बी परंपरा है। सदियों से समाज और परिवार में स्त्रियों के लिए संघर्ष और समस्याओं की एक पूरी दुनिया समाज और साहित्य दोनों जगहों में बराबर रही हैं। समस्याएँ अनन्त हैं। वास्तव में इन समस्याओं को खुलकर बयान करने में समकालीन महिला लेखन एकदम कामियाब रहा। अर्थात् हिन्दी का महिला लेखन समकालीन दौर में अधिकाधिक विकसित हो रहा है।

समकालीन हिन्दी महिला लेखन में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवर्तनों के विविध आयाम परिलक्षित होते हैं। यानी आज नारी लेखन में मात्र स्त्री जीवन की प्रस्तुति ही नहीं उसमें समग्र रूप से समाज को पकड़ने की कोशिश भी हैं। समस्याओं की एक भरी दुनिया स्त्री के चारों ओर घूम रही है। स्त्री जीवन की इन समस्याओं को खुलकर बयान करने में समकालीन हिन्दी महिला लेखन कामियाबी हासिल करने लगा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक नारी होने के नाते साहित्यकारों ने स्त्री जीवन के अंतर्बाह्य जीवनानुभवों को प्रस्तुत किया, वहीं नारी मन की अतल गहराइयों में उतरकर उसका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अंकन भी किया है। पुरुष मर्यादित सीमाओं का अतिक्रमण कहानी, उपन्यास, कविता आदि के माध्यम से कर नारीत्व ने नये धरातल पर नींव रखी है। फिर भी स्वतंत्रता के बाद हिन्दी साहित्य में जिस प्रकार कथा-साहित्य, प्रमुख रूप में स्थापित हुआ, उसी प्रकार महिला लेखन का ढाँचा भी कथा-साहित्य के माध्यम से ही खड़ा हुआ है। अर्थात् जिस विशिष्ट संवेदनात्मक धरातल पर महिला लेखन की अलग पहचान बनी है, वह कथा-साहित्य के माध्यम से ही संभव हुई है। नारी की जागृत चेतना तथा संघर्ष को प्रभावी ढंग से चित्रित करने में तथा समसामायिक राजनीतिक, सांस्कृतिक पहलुओं को चित्रित करनेवाली समकालीन लेखिकाओं में अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के नाम भी हैं। इनकी रचनाओं की लोकप्रियता के कारण ही, मैंने इस विषय को शोध के लिए चुना था। मेरा शोध विषय है - "अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी का कथा साहित्य : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"। अध्ययन की सुविधा के लिए इसको पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

'आधुनिक महिला कथा लेखन की परंपरा' पहला अध्याय है। इस अध्याय को दो खण्डों में बाँटा गया है - पहला प्रारंभिक दौर और दूसरा समकालीन दौर। शुरुआती दौर में राजेन्द्रबाला घोष, उषादेवी मित्रा, शिवरानी देवी आदि लेखिकाओं और उनके कथा साहित्य पर विचार किया गया है तो दूसरे में मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, दीप्ति खण्डेलवाल, मैत्रेयी पुष्पा आदि लेखिकाओं से लेकर अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी तक की लेखिकाओं और उनकी रचनाओं पर विचार किया गया है।

'अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में पितृसत्तात्मक समाज' इस शोध-प्रबन्ध का दूसरा अध्याय है। इसमें समाज एवं पुरुष की प्रभुता, राजनीति, धर्म, परम्परा, प्रेम, परिवार, शिक्षा आदि के सन्दर्भ में स्त्रियों पर जो शोषण और दबाव हो रहा है उस पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त पुरुष वर्चस्व की पहचान पर भी विचार किया गया है।

तीसरा अध्याय है - 'अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में स्त्री प्रतिरोध का स्वर'। इसमें ऐतिहासिक भूमिका, परंपरागत वर्जनाओं की चुनौतियाँ, पुरुष शत्रु नहीं, स्वत्वान्वेषण अकेले में नहीं, शिक्षा की भूमिका, स्त्री-पुरुष संबन्ध, पत्नीत्व और नारीत्व आदि पर विचार किया गया है।

'अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिदृश्य' शीर्षक चौथे अध्याय में

इतिहास, राजनीति, आमजनता के शोषण, बेरोज़गारी, सम्प्रदायिकता आदि पर विशेष बल दिया गया है।

पाँचवाँ अध्याय 'अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में चित्रित अन्य समस्याएँ' हैं। इसमें खासकर आदिवासी शोषण, बुढ़ापे की समस्या, मृत्युबोध, परिवार, मध्यवर्गीय समाज की कुण्ठा, निराशा और विवशता, अकेलापन आदि पर विचार किया गया है।

अंत में उपसंहार एवं ग्रन्थ सूची भी दिए गए हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की एसोसियेट प्रोफेसर डॉ. के. अजिता के निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया गया है। समय-समय पर उनसे मिले बहुमूल्य सुझावों एवं सलाहों से ही यह कार्य संपन्न हो पाया है। मैं उन्हें हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। विभागाध्यक्षा, प्रोफेसर के. वनजा के प्रति भी मैं आभारी हूँ कि वे इस शोधकार्य की संपूर्ति के लिए मुझे सारा सहयोग देती रही।

विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति भी मैं आभारी हूँ, खासकर डॉ. आर. शशिधरन जी के प्रति जो मुझे निरंतर प्रोत्साहन देते रहे हैं।

पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

आखिर मैं अपने घरवालों के प्रति खासकर माँ, मामा, भाई, नानी और अपने पति और उनके परिवारवालों के प्रति, अपने प्रिय मित्रों एवं शुभचिंतकों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर मेरी सहायता की है।

मैं यह शोध-प्रबन्ध विद्वानों के सामने सविनय प्रस्तुत कर रही हूँ। त्रुटियों एवं कमियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

सर्वोपरि मैं खुदा की कृपा का ऋणी हूँ।

सविनय

सफीना एस.ए.

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन-682022

तारीख : -02-2015

विषय प्रवेश

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1-63

आधुनिक महिला कथा लेखन की परंपरा

1.1 शुरुआती दौर

1.1.1 राजेन्द्र बाला घोष (बंग महिला)

1.1.2 उषादेवी मित्रा

1.1.3 शिवरानी देवी

1.1.4 सत्यवती माल्लिक

1.1.5 कमला चौधरी

1.1.6 सुभद्राकुमारी चौहान

1.1.7 सुमित्रा कुमारी सिन्हा

1.1.8 हेमवती देवी

1.1.9 शिवानी

1.1.10 कृष्णा सोबती

1.1.11 मन्नू भंडारी

1.1.12 उषा प्रियंवदा

1.1.13 कृष्णा अग्निहोत्री

1.1.14 शशिप्रभा शास्त्री

1.2 समकालीन महिला लेखन

1.2.1 मृदुला गर्ग

1.2.2 ममता कालिया

1.2.3 दीप्ति खंडेलवाल

1.2.4 मैत्रेयी पुष्पा

1.2.5 चित्रा मुद्गल

1.2.6 सूर्यबाला

1.2.7 सुधा अरोडा

1.2.8 मृणाल पाण्डेय

1.2.9 मेहरुन्निसा परवेज़

1.2.10 निरुपमा सेवती

1.2.11 नासिरा शर्मा

1.2.12 गीतांजली श्री

दूसरा अध्याय 64-97

अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में पितृसत्तात्मक समाज

2.1 समाज और पुरुष की प्रभुता

2.1.1 धर्म के क्षेत्र में नारी का शोषण

2.1.2 नारी शोषण : परंपरा एवं सांस्कृतिक ह्रास

2.1.3 प्रेम के सन्दर्भ में मर्दवादी मानसिकता

2.1.4 नारी पारिवारिक शोषण की शिकार

2.1.5 राजनीति के क्षेत्र में स्त्री का शोषण

2.1.6 नारी शोषण : शिक्षा के सन्दर्भ में

तीसरा अध्याय 98-135

अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में स्त्री प्रतिरोध का स्वर

3.1 ऐतिहासिक भूमिका

3.1.1 परंपरागत वर्जनाओं की चुनौतियाँ

3.1.2 पुरुष शत्रु नहीं

3.1.3 स्वत्वान्वेषण अकेले में नहीं

3.1.4 शिक्षा की भूमिका

3.1.5 स्त्री पुरुष संबन्ध

3.1.6 पत्नीत्व और नारीत्व

3.1.7 देह के परे नारी की अस्मिता

3.1.8 कहानियों में प्रतिरोध का स्वर

3.1.9 पारिवारिक शोषण का प्रतिरोध

चौथा अध्याय 136-174

अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिदृश्य

4.1 ऐतिहासिक परिदृश्य

4.1.1 राजनैतिक परिदृश्य

4.1.2 आमजनता का शोषण

4.1.3 बेरोज़गारी की समस्या

4.1.4 सांप्रदायिकता

4.1.5 भूमण्डलीकरण, विज्ञापन, बाज़ार और विचारधारा

पाँचवाँ अध्याय 175-205

अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में चित्रित अन्य समस्याएँ

5.1 हाशिएकृत समाज

5.1.1 निराशा और विवशता

5.1.2 अकेलापन

5.1.3 पारिवारिक संकल्पना

5.1.4 मध्यवर्गीय समाज की कुण्ठा और आर्थिक विषमता

5.1.5 पारिवारिक विघटन

5.1.6 बुढ़ापे की समस्या और मृत्युबोध

उपसंहार 206-212

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 213-228

परिशिष्ट 229

पहला अध्याय

आधुनिक महिला कथा लेखन की परंपरा

पहला अध्याय
आधुनिक महिला कथा लेखन की परंपरा

हिन्दी महिला लेखन आज मजबूत स्थिति में पहुँचा है जिसके पीछे कई महिला साहित्यकारों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। नारी के अस्मिता-बोध को प्रकट करके नारी जीवन की स्थितियों और जटिल अनुभूतियों को साहित्यिक कृतियों में चित्रित करने में महिला लेखन का बहुत बड़ा हाथ है। स्त्री को स्त्री की दृष्टि से देखने, समझने का कार्य इसके ज़रिए ही संभव हुआ है। स्त्री के लिए उसका स्त्रीत्व एक स्वानुभूत सत्य है। यह पुरुष के लिए केवल कल्पना मात्र है। इस प्रामाणिक सच्चाई के कारण ही आज हिन्दी महिला लेखन पुरुष लेखन की अपेक्षा और भी विश्वसनीय है। कहने का तात्पर्य यह है कि नारी को नारी ही सूक्ष्म एवं समग्र दृष्टि से समझ-परख सकती है।

स्त्री जीवन का चित्रण हिन्दी महिला लेखन से संभव हुआ है। महिला लेखिकाओं के लिए स्त्री जीवन कल्पना एवं अनुमानित सच्चाई नहीं। वह उनका अपना जीवनानुभव है। उस ठोस आधार पर वे रचनायें रचती हैं। इसलिए उनकी रचनाओं में जीवन का तापमान है, तनाव है। न तो ये लेखिकाएँ नारी को अपनी रचनाओं में महिमामंडित करती हैं और न ही उन्हें नकली रूप से पीड़ित। वर्तमान महिला लेखन स्त्री समस्याओं को सीमित दायरे में देखना परखना नहीं चाहता है।

वह बृहत्तर मानव समाज की समस्या के रूप में स्त्री समस्याओं को ही देखने लगा है। इसलिए राजनीति, इतिहास, समाजशास्त्र आदि सभी महिला लेखन का विषय बनते आ रहे हैं।

1.1 शुरुआती दौर

समकालीन कथा साहित्य का महिला लेखन सन्दर्भ अपने आप में नया प्रयास नहीं है। इसकी एक लम्बी परंपरा है। स्त्री की सर्जनात्मक प्रतिभा का विकास उसकी सामाजिक अवस्था पर निर्भर रहता है। ज्यों-ज्यों समाज में स्त्री-शिक्षा का प्रचार होता गया त्यों-त्यों स्त्री की दुनिया विस्तृत होने लगी। लेखन कार्य उनमें सबसे प्रमुख है। विश्व की हर भाषा में आज महिला लेखन प्रखर है। लेकिन एक समय ऐसा रहा जब महिलाएँ रचना के क्षेत्र में अनुपस्थित थीं। यहाँ तक कि आधुनिक काल में भी महिला लेखन काफी दुर्बल रहा। उसका कारण प्रतिभा का अभाव नहीं, पुरुषवर्चस्ववाले समाज में उसे दबा दिया गया था। उक्त समय का जो महिला लेखन है, जो काफी संघर्ष का दौर भी रहा था, उसे देखे, समझे बिना समकालीन महिला लेखन का अध्ययन अधूरा रह जाएगा। बंग महिला राजेन्द्र बाला घोष से लेकर कई लेखिकाओं ने इस सन्दर्भ में अपनी रचनात्मकता का परिचय दिया है।

1.1.1 बंग महिला (राजेन्द्र बाला घोष)

यह हिन्दी स्त्री-कथाकारों के लिए गौरव का विषय है कि आधुनिक हिन्दी की प्रथम कहानी पर चर्चा करते वक्त 'दुलाईवाली' (राजेन्द्र बाला घोष) को

अनदेखा नहीं कर सकते। 'दुलाईवाली' में लेखिका का पूरा तजुर्बा ध्वनित होता है। स्वाभाविकता और यथार्थ चिन्तन के अतिरिक्त इस कहानी में कहीं भी रोमांचक विस्मय वर्णित नहीं है। इतना ज़रूर है कि तत्कालीन कहानियों का सबसे उपादेय टेक्नीक 'कुतूहल' रहा है, जो 'दुलाईवाली' में भी पाया जाता है। लेकिन कहानी लेखिका ने कुतूहल का अतिरंजन अथवा पुरुषयोग ज़रा भी नहीं किया है। स्टेशन पर पति के छूट जाने के बाद रेलगाड़ी में अकेली पड़ी किसी भी स्त्री के प्रति वे ही सारी स्थितियाँ आज भी घटित होंगी जो 'दुलाईवाली' में घटित हुई हैं। "दुलाईवाली कहानी के तीन खण्ड यथार्थ और उपादेयता का समन्वय करते हुए कहानीपन को बड़ी त्वरा के साथ आगे बढ़ाने वाले है और चौथे खण्ड के अन्त में कहानी की 'चरम सीमा' का सृजन करके कहानी का समापन हुआ है। बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में इस प्रकार के कहानी शिल्प का दर्शन दूसरी कहानियों में नहीं होता है। यह थीं बंग महिला जिनकी कहानियों में जीवन की प्रासंगिकताओं का बोध उभरा हुआ है।"[1] कहने का तात्पर्य यह है कि कहानी-लेखन के आविर्भाव काल में बंग महिला राजेन्द्र वाला घोष सबसे अधिक संवेदनशील कहानीकार रही है। युगीन चेतना और तात्कालीन साहित्यिक धर्मिता के प्रति समर्पण भाव होने के कारण ही इनमें लेखन की सर्वाधिक मौलिकता पाई जाती है। इन्होंने बँगला साहित्य में प्रायः ऐसी कहानियों का अनुवाद किया जिनमें युग की सामाजिक समस्याओं को उठाया गया हो।

---

1. भवदेव पाण्डेय - बंग महिला : नारी मुक्ति का संघर्ष - पृ. 78, 79

कहानी जगत् में श्रीमती बंग महिला का पदार्पण सर्वप्रथम अनुवादक के रूप में हुआ था। बाद में उन्होंने कई मौलिक कहानियाँ लिखीं। प्रकाशन की दृष्टि से राजेन्द्रबाला घोष की रचनाएँ किसी एक पत्रिका में सीमित नहीं थीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संपादित 'कुसुम' संग्रह में उनकी कहानियाँ संकलित हैं। बंग महिला की ज़्यादातर कहानियाँ नारी समस्याओं तथा राष्ट्रीय जागरण को आधार बनाकर लिखी गयी हैं। वास्तव में बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी के साथ ही हिन्दी में महिला कथाकारों की परंपरा का प्रारम्भ हुआ था।

'कुम्भ में छोटी बहु' नामक दूसरी कहानी में मीरजापुरी अंचल की भाषा को लेखिका ने अपनी पूरी सांस्कृतिक चेतना के साथ प्रस्तुत किया है। "'कुम्भ में छोटी बहु' में चार अलग प्रसंग हैं और सभी वर्तमान काल में नियोजित हैं। ये चारों प्रसंग समय की रैखिक श्रृंखल में निबद्ध और एक दूसरे में अन्तर्युक्त हैं। इसमें संयोग तत्व विरल है और जो है वह सम्भावना की कोटी से बाहर और जबरदस्ती से लाया हुआ नहीं है।"[1] इस प्रकार अपनी कहानियों को एक ज़रिया बनाकर राजेन्द्रबाला घोष ने भारत की बदहाल आर्थिक दशा और देश में व्यापक रूप से फैली बेरोज़गारी की समस्या के साथ-साथ समाज में नारियों की स्थिति और जातिगत पक्षधरता को भी रेखांकित करने में कामियाब रहीं।

जिस समय बंग महिला अन्य कहानीकारों के साथ रचना के क्षेत्र में उतरी उस समय हमारा समाज रूढ़ियों और अंधविश्वासों से बुरी तरह जकड़ा हुआ था।

---

1. गोपाल राय - हिन्दी कहानी का इतिहास - पृ. 58

यद्यपि उन्होंने मौलिक रचनाएँ बहुत कम ही लिखीं परन्तु उनमें युग की आवश्यकताओं को मुखर बनाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। बंग महिला ने सिर्फ कहानियाँ लिखी हैं, फिर भी समकालीन कहानीकारों के बीच उनकी अपनी एक खास पहचान है।

1.1.2 उषादेवी मित्रा

राजेन्द्रबाला घोष की परंपरा को आगे बढ़ाने में उषादेवी मित्रा का अपना एक विशेष योगदान रहा है। परिवार और नारी को उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों का कथ्य बनाया। नारी की भिन्न-भिन्न जीवन परिस्थितियों की अभिव्यक्ति उनकी कहानियों में मिलती है। उषाजी ने कई उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं। इनका सन्देश नारी को अपनी स्थिति पहचानने और उसे समाज में आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाने का है। उन्होंने अपनी रचनाओं के ज़रिए समाज में उत्पीड़ित नारी की वैयक्तिक सत्ता तथा स्वाधीनता का समर्थन किया। उषा देवी मित्रा की मातृभाषा बंगला है। उन्होंने साहित्यिक सृजन की क्षमता विरासत के रूप में प्राप्त की थी। इसके सिवा रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव भी उनपर पड़ा था।

हिन्दी की ओर उनकी रुचि आकस्मिक रूप में बढ़ी थी। इसके बारे में वे खुद लिखती हैं कि - "बीमारी की दशा में मेरे हिन्दी भावी मित्र मुझे 'चन्द्रकान्ता' आदि उपन्यास तथा कहानियाँ सुनाया करते थे। मुझे लगा कि हिन्दी साहित्य अभी शिशु अवस्था में है तथा शब्दकोश क्षुद्र है। एक दिन मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' सुना। मैं प्रभावित हो उठी कि हिन्दी साहित्य में भी कुछ है, खोज, सूक्ष्म दृष्टि भी

है। ....चुंबक की नाई उस 'साकेत' ने मुझे प्रभावित कर लिया।"[1] इस तरह हिन्दी में लिखने लगीं। प्रेमचन्द का प्रोत्साहन भी उन्हें मिला तथा हंस में उनकी प्रथम कहानी 'मातृत्व' छपी। प्रस्तुत कहानी पढ़ने के बाद प्रेमचन्द ने उषादेवी मित्रा को आगे लिखने की प्रेरणा देकर उन्हें पत्र भी भेजा। उनकी कहानियों में मुख्यतया भारतीय परिवार में नित्य प्रति होने वाली समस्याएँ थीं। उनकी कहानियों का मुख्य उद्देश्य समाज की वर्तमान समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना तथा मानव समाज का उत्थान करना था। उषा जी की कहानियाँ सात संग्रहों में प्रकाशित हैं, वे हैं - आँधी के छन्द, महावर, नीम चमेली, रात की रानी, मेघ-मल्लार, रागिनी, सान्ध्य पूरबी।

कहानी के क्षेत्र के अतिरिक्त उपन्यासों की रचना करने में भी उषा जी बहुत माहिर रही हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी समस्या और स्त्री-पुरुष प्रेम आदि का चित्रण किया है। "उषा देवी मित्रा के उपन्यासों में नारी के अंतरम की कोमलता और प्रेम की टीस का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। उनके उपन्यास व्यक्ति व्यंजक उपन्यासों की कोटि में आते हैं।"[2] वचन का मोल, प्रिया, जीवन की मुस्कान, नष्टनीड़, पथचारी, सोहनी आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं। 'वचन का मोल' श्रीमती मित्रा का प्रथम उपन्यास है, जिसमें प्रेम एवं विवाह संबन्धी समस्याओं को उठाया गया है। उपन्यास में आदर्शवाद देखने को मिलता है। साथ ही साथ भारतीय संस्कृति को केन्द्र बिन्दु बनाया है। दूसरे उपन्यास 'प्रिया' में उषा जी ने

---

1. साहित्य अमृत (पत्रिका) - पृ. 37 (जानवरी 2003)
2. डॉ. उषा यादव - हिन्दी महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना - 46

भारतीय समाज के अभिशाप-विधवा जीवन को आधार बनाया है तो 'जीवन की मुस्कान' में उन्होंने यह सिद्ध किया है कि प्रेम ही जीवन की मुस्कान है। 'नष्टनीड' में नारी जीवन की व्यथा की कथा लेखिका ने स्वयं नारी के द्वारा ही कहलायी है। उषा जी ने अपने इस उपन्यास में भी अन्य रचनाओं की तरह प्रेम और विवाह की समस्याओं को उठाया है। 'सोहनी' उपन्यास की नायिका सोहनी अपने प्रेम की सफलता के लिए कुछ भी करने को तैयार है। वह आत्मनिर्भर भी बनती है। चन्द शब्दों में कहे तो नारी के त्याग और सेवावृत्ति का वर्णन उषादेवी मित्रा ने अपने कथा साहित्य में पूर्ण मनोयोग से किया है। वे नारी को पुरुष की दासी नहीं, पुरुष की सहयोगी मानती है। सांसारिक जीवन के यथार्थ अंकन उनके कथा साहित्य की विशेषता है।

1.1.3 शिवरानी देवी

प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी ने अनेक उत्कृष्ट कहानियों की रचना करके हिन्दी कथा-साहित्य की समृद्धि की। प्रेमचन्द के संपर्क से ही शिवरानी देवी में पढ़ने, लिखने और अध्ययन करने की प्रेरणा जगी। शिवरानी देवी के ही शब्दों में - "उनकी कहानियों को सुनते-सुनते मेरी भी रुचि साहित्य की ओर हुई। जब वे, घर पर होते, तब मैं कुछ पढ़ने के लिए उनसे आग्रह करती। सुबह का समय लिखने के लिए वे नियम रखते। दौरे पर भी वे सुबह ही लिखते। बाद में मुआइना कहते जाते। इसी तरह मुझे उनका साहित्यिक जीवन के साथ सहयोग करने का

अवसर मिलता।"[1] शिवरानी देवी ने अपनी रचनाओं के ज़रिए नारी के प्रति समाज में एक संवेदनात्मक दृष्टिकोण उभारने का प्रयास किया। बाल विवाह, दहेज प्रथा, वैधव्य आदि नारी की विषम स्थितियों की अभिव्यक्ति लेखिका ने की है।

शिवरानी देवी ने पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक कई कहानियाँ लिखी हैं। उनकी पहली कहानी 'साहस' 1927 में 'चाँद' में प्रकाशित हुई। कौमुदी, नारी हृदय आदि उनके कहानी संकलन हैं। "शिवरानी प्रेमचन्द की कहानियों में कथ्य प्रधान रूप से औरत की जिन्दगी की वैयक्तिक और सामाजिक स्थितियों के दबाव ही है पर उनके पास एक दृष्टि और एक परिप्रेक्ष्य है। स्थितियों में निहित अन्यायों की अन्याय के रूप में पहचान और निर्भर चित्रण उनका हस्ताक्षर है।"[2] शिवरानी देवी की कहानियों का मुख्य उद्देश्य नारी को अपनी शोचनीय स्थिति से जगाना है। सन् 1937 में हंस पत्रिका की संपादिका के रूप में भी उन्होंने कार्य किया है। पूँजीवाद की छाया में पनपने वाले सामाजिक अत्याचारों के खिलाफ उन्होंने अपनी लेखनी चलायी।

1.1.4 सत्यवती मालिक

समाज की समस्याओं को अपनी कहानियों द्वारा व्यक्त करने में सत्यवती मालिक भी अन्य महिला लेखिकाओं की तरह कामियाब रहीं। वे एक प्रतिबद्ध लेखिका हैं। प्रगतिशील विचार उनकी कहानियों में हमें देखने को मिलता है।

---

1. शिवरानी देवी प्रेमचन्द - प्रेमचन्द घर में - पृ. 22
2. विभूति नारायण राय - कथा साहित्य में सौ बरस (लेख) अर्चना वर्मा - पृ. 185

सत्यवती ने अपनी सामाजिक कहानियों में विवाह समस्या, बेकारी की समस्या, देहाती जीवन की कठोरताओं एवं संकीर्णताओं का उद्‌घाटन, वहाँ के रीति-रिवाज़ों, पर्दा प्रथा आदि का चित्रण किया है। बेकारी की समस्या को लेकर लिखी गयी उनकी कहानी है 'बेकारी'। सत्यवती जी के चार कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, वे हैं 'दो फूल', 'वैशाख की रात', 'दिन-रात' और 'नारी हृदय की साध'। इन चारों ही कहानी संग्रहों में लेखिका ने पारिवारिक, सामाजिक, प्रगतिशील या समाजवादी और प्रतीकात्मक कहानियाँ लिखी हैं। उनकी प्रथम कहानी 'गुरुकुल काँगड़ी' हरिद्वार की 'ज्योति' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। 'भाई-बहन', 'माली की लकड़ी', 'दो फूल' आदि बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से लिखी गयी रोचक कहानियाँ हैं। 'एक सन्ध्या' नामक कहानी में सामाजिक यथार्थ का अंकन हुआ है।

जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों को समेट कर सत्यवती जी ने अपनी कहानियों का निर्माण किया है। अज्ञेय ने सत्यवती की कहानियों की व्याख्या करते हुए लिखा है - "दो फूल एक ऐसे व्यक्ति के मनोभावों का प्रतिबिंब है, जिसकी सौन्दर्यानुभूति औसत से काफी ज़्यादा है। मानव जीवन के खासकर नारी जीवन के दुःख, क्लेश का जिक्र पुस्तक में है। किन्तु उनसे लेखिका का संबन्ध सौन्दर्य की खोज करनेवाले का नहीं। यही सत्यवती जी की कहानियों की विशेषता है और उनका प्रधान गुण भी है।"[2] यानी यथार्थ का पुट एवं विषय की विविधता के कारण उनकी कहानियाँ रोचक सिद्ध हुई हैं।

---

1. अज्ञेय - त्रिशंकु - पृ. 105
2. कथा साहित्य के सौ-बरस (सं) विभूति नारायण राय (लेख) बीसवीं सदि की कहानी का स्त्री अध्ययन - अर्चना वर्मा - पृ. 187

1.1.5 कमला चौधरी

साहित्यिक क्षेत्र के साथ कमला चौधरी ने स्वाधीनता संग्राम में भी हिस्सा लिया है। राजनीति के क्षेत्र में उनकी विशेष रुचि थी। समाज की विभिन्न समस्याओं को उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया। निम्न जाति के लोगों पर हो रहे अन्याय के विरुद्ध 'पागल', प्रायश्चित आदि कहानियों के ज़रिए उन्होंने आवाज़ उठायी। नारी जीवन की समस्याओं का अंकन भी उन्होंने बारीकी से किया है। "सामाजिक मर्यादाओं के बन्धी आदर्श आचरण के लिए प्रतिबद्ध नायिका की हार्थिक व्यथा और मानसिक द्वन्द्व चित्रण उनकी कहानियों की रूपरेखा है।"[1] कमला चौधरी नारी स्वातंत्र्य और नारी शिक्षा की हिमायती रही। विधवाओं की समस्याओं को व्यक्त करके उनके पुनर्विवाह का समर्थन करने का कार्य उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। उनके चार कहानी संकलन हैं - 'उन्माद', 'यात्रा', 'पिकनिक' एवं 'प्रसादी कमण्डल'। इन चारों कहानी संकलनों की कहानियों में कमला चौधरी ने सामाजिक, ऐतिहासिक, उपदेशात्मक, भावप्रधान और हास्यरस की कहानियाँ लिखी हैं। जाति, धर्म, संप्रदाय, वर्ग, प्रेम, घृणा, आचार-व्यवहार, नैतिकता, विनोद आदि कई ऐसे तथ्य हैं जो अनुभूति की ऐकान्तिक गहराई के साथ इनकी कहानियों में साफ-साफ झलकती है। उनकी सभी रचनाएँ मनोरंजन के साथ-साथ सन्देश-वाहिका भी है।

---

1. कथा साहित्य के सौ बरस (सं) (विभूति नारायण राय (लेख) बीसवीं सदि की हिन्दी कहानी का स्त्री अध्ययन - अर्चना वर्मा - पृ. 187

1.1.6 सुभद्राकुमारी चौहान

सुभद्राकुमारी चौहान कथा-लेखिका कम और एक देशप्रेमी कवयित्री के रूप में ज़्यादा जानी जाती है। हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष की समस्याओं को उन्होंने अपनी रचनाओं का विषय बनाया। राष्ट्रीय जागरण ही उनका लक्ष्य था। देश की स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण उन्हें अपनी शिक्षा छोड़कर जेल जाना पड़ा। "सुभद्रा जी ने कहानी लिखना आरंभ कर दिया था क्योंकि समाज की अनीतियों से उत्पन्न जिस पीड़ा को वे व्यक्त करना चाहती थी उसकी अभिव्यक्ति का उचित माध्यम गद्य ही हो सकता था, अतः सुभद्रा जी ने कहानियाँ लिखीं। उनकी कहानियों में देश-प्रेम के साथ-साथ समाज को, अपने व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करने के लिए संघर्षरत नारी की पीड़ा और विद्रोह का स्वर मिलता है। साल भर में उन्होंने एक कहानी संग्रह 'बिखरे मोती' ही बना डाला।"[1] यानी कि सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी कहानी कला के माध्यम से नारी स्वातंत्र्य एवं नारी समानाधिकार का विचार प्रकट किया है। विधवाओं की समस्याओं की ओर उन्होंने दृष्टि डाली साथ ही सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को भी अपनी कहानियों में प्रमुखता दी।

सुभद्राकुमारी चौहान के तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं, वे हैं - 'उन्मादिनी', 'बिखरे मोती', 'सीधे-सीधे चित्र'। इन तीन संग्रहों की कहानियों में

---

1. आजकल - मार्च (2008) सं. सीमा ओझा भारतीय स्त्रीत्व की सुभद्राकुमारी चौहान, प्रख्यात कवयित्री व कथाकार सुभद्राकुमारी चौहान के बारे में बना रहे हैं राजेन्द्र उपाध्याय

'उन्मादिनी', 'भग्नावशेष', 'होली', 'दृष्टिकोण', 'कदम्ब के फूल', 'ग्रामीण गौही', 'रूपा', 'कल्याणी' आदि कहानियाँ उनके पारिवारिक कहानियों के अन्तर्गत आती हैं तो सामाजिक कहानियों की कोटि में 'किस्मत', 'नारी हृदय', 'एकादशी' आदि और 'ताँगेवाला', 'गुलाब सिंह', 'पापी-पेट', 'राही' आदि सुभद्रा जी की स्वाधीनता आन्दोलन से संबन्धित कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ सुभद्राजी जी के अनुभव पर आधारित होने के कारण पाठक के चित्त पर एक विशेष प्रभाव डालती है। स्वाधीनता आन्दोलन से सम्बन्धित अनेक प्रसंग इनमें उपस्थित हुए हैं। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध लेखिका सुधा अरोड़ा का कहना है कि - "सुभद्रा के जीवन के बारे में जानने के बाद हम उनकी कहानियाँ पढ़े, तो स्पष्ट हो जाता है कि सुभद्रा जी ने अपने जेल जीवन, अपने परिवेश, अपने ईदगिर्द के चरित्रों को ज्यों-का-त्यों कहानियों में ढाल दिया है, इसलिए उनकी कहानियों में न बनावट है, न बुनावट"[1] यानी सुभद्रा कुमारी चौहान ने किताबी ज्ञान के आधार पर सुनी-सुनाई बातों को आश्रय करके कहानियाँ नहीं लिखीं वरन् अपने अनुभवों को उन्होंने कहानियों में रूपांतरित किया है।

सुभद्राकुमारी चौहान ने स्त्रियों के दुःख-दर्द, उनकी कठिनाइयों तथा उनकी शक्ति सब पर बड़े ही मनोयोग से विचार किया। इस दृष्टि से सुभद्रा जी हिन्दी की प्रारम्भिक स्त्री विमर्शकारों की कतार में हैं "सुभद्रा कुमारी चौहान की सामाजिक जीवन में स्त्रियों को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका थी। वे स्त्री

---

1. कथादेश - साहित्य, संस्कृति और कला का समग्र मासिक। अक्तूबर 2004 (सं) हरिनारायण, लेख - एक विद्रोहिणी कवयित्री के सामाजिक सरोकारों का पुनर्पाठ (सुधा अरोडा) - पृ. 53

स्वतंत्रता की हमेशा वकालत करती थी। साथ ही राष्ट्रवादी नेतृत्व की भी तारिफ करती थी।"[1] संक्षेप में कहा जाए तो सुभद्राकुमारी चौहान का कथा साहित्य हमारे लिए मुक्ति चेतना की एक बृहत्तर आहट को लेकर सामने आता है। गजब के सौन्दर्य और सादगी के कारण उनकी रचनाएँ स्वयं बोल उठती हैं।

1.1.7 सुमित्राकुमारी सिन्हा

सुमित्राकुमारी सिन्हा की पहचान हिन्दी की अन्य सभी कथा लेखिकाओं से अलग और निजी है। अधिकांश लेखिकाएँ जहाँ अपनी सुन्दर भाषा के घेरों में बन्द है, वहाँ सुमित्रा कुमारी सिन्हा ने व्यंग्य की शक्ति से कुछ अविस्मरणीय रचनायें रची हैं। सुमित्राकुमारी सिन्हा ने अपनी कहानियों में आर्थिक परतंत्रता में जकड़ी हुई नारियों की समस्याओं को अंकित किया है। नारी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और उसकी आर्थिक स्वतंत्रता दोनों पर उन्होंने विचार किया है। अर्थात् अपनी रचनाओं के ज़रिए नारी को घर की चारदीवारों की सीमा से बाहर निकालने का प्रयास उन्होंने किया है। "सन् 70 के बाद के स्त्री लेखन में अस्मिता की तलाश का जो स्वर मुखर हुआ उसका प्रथम सचेत उच्चार सुमित्रा सिन्हा की कहानियों में ही सुनायी दिया था। स्त्री के सृजन संसार में वे प्रथम सचेत विद्रोहिणी है।"[2] परंपरा के जंजीरों में बन्धी भारतीय नारी के मन की विक्षुब्धता को बिना हिचक के साथ उन्होंने अपनी कहानियों में व्यक्त किया है।

---

1. अलका प्रकाश - नारी चेतना के आयाम - पृ. 51
2. (सं) विभूतिनारायण - कथा साहित्य के सौ बरस, बीसवीं सदी की हिन्दी कहानी का स्त्री अध्ययन - अर्चनावर्मा - पृ. 188

कथानक के आधार पर उन्होंने ज़्यादातर, सामाजिक और पारिवारिक कहानियाँ लिखीं हैं। 'वर्ष गाँव', 'अचल सुहाग' आदि उनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं। भारतीय नारी की दुविधा और घुटन को उन्होंने अपनी कहानियों में मूल समस्या के रूप में चित्रित किया है। समाज के पुराने रवैये के विरुद्ध नई विचारधाराओं के अनुसार परिवर्तन लाना ही उनका मकसद था।

1.1.8 हेमवती देवी

हेमवती देवी की कहानियों में निम्नवर्ग एवं मध्यवर्ग की विषमताओं को अभिव्यक्ति मिलती है। आम जनता का शोषण करनेवाले उच्चस्थानीय लोगों का पर्दाफाश करने में वे सदैव कामियाब रहीं। पारिवारिक कहानियाँ लिखने में माहिर हेमवती देवी ने स्त्री-जीवन की समस्याओं का उद्‌घाटन किया। नारी मुक्ति के लिए परिश्रम किया, इस कारण उनकी कहानियों में नारी की विवशता, नारी का फूहडपन, पारिवारिक, संबन्ध की झाँकियाँ प्रस्तुत हुई हैं। उनके चार कहानी संकलन है - 'निःसर्ग', 'घरोहर', 'स्वप्न भंग', 'अपना घर'। कहानी 'राव की मटकी' में हेमवती देवी ने एक साधारण ग्रामीण किसान परिवार की आर्थिक विषमताओं का चित्रण किया है तो 'बिसाती' में जीवन के अभावों और व्यथा के कारण दुःख के सागर में डूबे अभागिनी नारी की कथा है। 'गृहणी', 'विडम्बना' जैसी कहानियों में ऐसी नारियों के जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गयी है, जिनके पति, संतान की उपेक्षा करते हैं। विधवा बहु के प्रति परिवार के अन्य रिश्तेदारों का बर्ताव किस तरह का होता है इसे 'गोटे की टोपी' कहानी द्वारा लेखिका ने चित्रित

किया है। 'गोटे की टोपी', कहानी का भी आरम्भ परिवार में विधवा की उपेक्षा और शोषण के चित्रण से हुआ है। इसमें लेखिका ने विधवा विवाह का प्रतिपादन करने की हिम्मत दिखायी है और वह भी बहुत कलात्मक ढंग से।"[1] हेमवती देवी समाज के निम्न मध्य वर्ग की नारी की दयनीय स्थिति का अंकन कर नारी की आत्मा को बल प्रदान करने का परिश्रम करती है। सामाजिक रूढ़ियों एवं परंपराओं में जकड़े परिवार में वैधव्य की पीड़ाओं को भी अभिव्यक्त किया है।

1.1.9 शिवानी

शिवानी जी का कथा साहित्य वैविध्य पूर्ण है। उनके उपन्यास व कहानियाँ भावनात्मक और विचारात्मक विविधताएँ प्रस्तुत करती हैं, जिनसे पाठकों को नई सोच मिलती है। शिवानी को निम्न मध्यवर्गीय जीवन का विशेष अनुभव रहा इसी कारण उनकी कहानियाँ और उपन्यासों का कोई भी पात्र कृत्रिम और अयथार्थ दिखाई नहीं देता है। शिवानी का रचना संसार अत्यन्त विस्तृत है।

शिवानी के उपन्यास का फलक व्यापक होने के कारण उसमें मानव जीवन की विविध स्थितियों का चित्रण, उसका मूल्यांकन तथा मानवीय अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मिलती है। "व्यष्टि एवं समष्टि के द्वन्द्वों से कथा वस्तुओं का ताना बाना बुनने वाली तथा व्यक्तित्व को लेकर उपन्यास जगत में एक सम्मोहन का सृजन करनेवाली, शिवानी ने महिला उपन्यासकारों के बीच जो स्थान आर्जित

---

1. गोपाल राय - हिन्दी कहानी का इतिहास - पृ. 260

किया है वह श्लाघ्य हैं, इनके उपन्यास व्यक्ति विशेष को प्रधानता देते हुए, स्वयं उदात्तता की सीमा रेखाओं को परिस्पर्श करने लगते हैं।"[1] यानी शिवानी ने अपने उपन्यासों में समाज की अपेक्षा व्यक्तिविशेष को अधिक प्रधानता दी है।

शिवानी ने नारी को अपने कथा-साहित्य का आधार बनाया है। अतः स्त्री संबन्धी कई समस्याएँ इनके कथा-संसार में हमें दिखाई देती हैं। शिवानी के नारी-पात्र समाज के अवाँछित बन्धनों को तोड़ते हैं। उनका उपन्यास 'किशनुली' में इसकी साफ झलक हमें देखने को मिलती है। "शिवानी वर्तमान समाज में नारीवर्ग की स्थिति और संभावनाओं के प्रति पूरी तरह से जागरूक हैं। संभवतः स्वयं नारी होने के कारण उनकी सहानुभूति और निष्ठा नारी वर्ग के साथ अपेक्षाकृत अधिक है।"[2] उनकी नारी हर तरह से आत्मनिर्भर और स्वतन्त्र रहकर भी समाज, परिवार आदि के मूल्यगत संस्कारों का उल्लंघन नहीं करती। उनकी सभी रचनाओं में नारी जीवन की व्यथा के बहुतेरे स्वर खुलते हैं।

शिवानी ने आधुनिक नारी की विषमताओं, मुसीबतों और परिस्थितियों को समझा। नारी जो आज घर की रसोई से बाहर आई तो उसके सामने अनेक समस्यायें पैदा हो गई हैं उन्हीं समस्याओं को चित्रित करना ही लेखिका ने अपना उद्देश्य माना है।

---

1. डॉ. शीलप्रभा वर्मा - महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ - पृ. 21
2. डॉ. अर्चना गौतम - शिवानी के उपन्यासों में सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना - पृ. 80

1.1.10 कृष्णा सोबती

कृष्णा सोबती हिन्दी कथा साहित्य की 'बोल्ड' लेखिका हैं। उन्होंने नारी जीवन की सच्चाइयों के यथार्थ रूप को समाज के सामने रखा। नारी जीवन के यथार्थ को करीब से और गहराई से पहचानकर, उसे संवेदना के स्तर पर कलात्मक अन्विति प्रदान करने में वे काफी सफल रहीं। उन्होंने स्त्री से जुड़े अनगिनत सवालों को अपनी रचनाओं में उठाया। कृष्णा सोबती नारी को स्वतंत्रता दिलाना चाहती हैं। उन्होंने साहित्य द्वारा नारी मुक्ति की घोषणा की है। "स्त्री की अस्मिता और मुक्ति का सवाल शुरु से ही कृष्णा सोबती की मुख्य रचनात्मक चिंता रहा है। प्रेमावेग की दुर्दमता को वे गहरी अस्मिता के साथ अंकित करती हैं।"[1] स्त्री की संपूर्ण दुर्बलता को दूर करके उसे समाज में शक्ति प्रदान करने की कोशिश कृष्णा सोबती ने की है। उनकी सभी रचनायें यथार्थ बोध और स्पष्टवादिता के उदाहरण हैं, जिसके केन्द्र में नारी ही रही है। नारी के अंतरंग को पहचानने की कला में वे निष्णात हैं।

'बादलों के घेरे' कृष्णा सोबती की आरंभिक कहानियों का संग्रह है। इसमें कुल 24 कहानियाँ संकलित हैं। कृष्णा सोबती ने इसमें मोहभंग की स्थिति को उजागर किया है। इसकी एक कहानी 'सिक्का बदल गया' भारत पाक विभाजन के दर्द को उनकी पूरी गहनता से उकेरने वाली कहानी है। व्यक्ति मन की विवशता को

---

1. साक्षात्कार मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् का मासिक प्रकाशन (सं) ध्रुव शुक्ल (निबन्ध) कि कृष्णा सोबती की कहानियों पर मधुरेश - पृ. 196

कृष्णा सोबती ने बड़े ही सूक्ष्म और कलात्मक ढंग से इसमें व्यक्त किया है। उनकी कहानियों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहले वर्ग में प्रेम और स्त्री-पुरुष संबन्धों की कहानियाँ हैं। दूसरा वर्ग उन कहानियों से बनता है जिनमें स्त्री के अस्तित्व की सार्थकता को उसके परिवेशगत द्वन्द्वात्मक संबन्धों के बीच खोजने की कोशिश की गई है। कृष्णा सोबती अपनी इन कहानियों में स्त्री की यातना और पीड़ा को उसके सामाजिक संदर्भों में ढूँढ़ने का प्रयास करती है। इन कहानियों का तीसरा वर्ग देश विभाजन की घटनाओं से जुड़ी त्रासदी, यातनाओं और विडम्बनाओं से संबन्धित है। संख्या की दृष्टि से कम होने पर भी कृष्णा सोबती की कहानियाँ साहित्य जगत् में बहुचर्चित हैं। "कृष्णा सोबती उस दौरान दिल्ली में थी और निश्चित अन्तरालों पर कहानियाँ लिख रही थीं। 1948 में 'सिक्का बदल गया' लिखकर अपनी पहचान बना चुकी थीं। इसके अलावा अपनी अधिकांश छोटी बड़ी कहानियाँ लिख लेने के बाद, 1956 में 'बादलों के घेरे' लिखकर कहानियों की रचना से विदा लेने की मनःस्थिति में थीं।"[1] 1956 के बाद कृष्णा सोबती ने लंबी कहानियाँ ही अधिकांश लिखी हैं।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में एक उपन्यासकार के रूप में ही वे अधिक जानी जाती हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं - 'डार से बिछुड़ी', मित्रो मरजानी 'जिन्दगी नामा', 'सूरज मुखी अन्धेरे के', 'दिलोदानिश', 'मित्रो मरजानी', 'ऐ लड़की', 'ज़िन्दगी नामा' और 'समय सरगम'। 'डार से बिछुड़ी' उनकी प्रसिद्ध उपन्यास है।

---

1. निर्मला जैन - कथा समय में तीन हमसफर - पृ. 18

यह उपन्यास पंजाब प्रदेश के जीवन पर आधारित है। अपने विशिष्ट पंजाबी तेवर के कारण उनके इस उपन्यास में अन्य उपन्यासों की तरह एक विलक्षण खुलापन और बेबाक सहजता समाहित है। 'मित्रो मरजानी' 1967 में प्रकाशित उनका सबसे चर्चित उपन्यास है। इसमें नारी की कामेच्छा को स्वाभाविक मानकर मित्रों के चरित्र का अंकन किया है। वे दैहिक और लौकिक सुखों को छोटा करके देखने में यकीन नहीं करतीं। उनका 'जिन्दगीनामा' किसी एक व्यक्ति या परिवार की कथा नहीं पूरे पंजाब की कथा है। विवेच्य उपन्यास में नारी के, माँ-रूप का महत्व चित्रित है। 'सूरजमुखी अंधेरे के' में बलात्कार से पीड़ित नारी के जीवन की जटिल समस्याओं पर लेखिका फोकस करती हैं। 1993 में प्रकाशित 'दिलोदानिश' 20वी. शताब्दी के आरम्भ में पुरानी दिल्ली में बसने वाले एक संयुक्त परिवार के फलते-फूलते इनसानी रिश्तों की कहानी है। वृद्ध जनों पर केन्द्रित 'समय सरगम' उपन्यास में लेखिका ने समकालीन जीवन की गति-विधियों को प्रस्तुत किया है। कृतिकार कृष्णा सोबती पर नज़र डालते हुए सुप्रसिद्ध लेखिका रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं कि "वंचित होने का अहसास कृष्णा सोबती की नारी को कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देता है। वास्तव में यही वह बिन्दु है जिसकी एक ओर वह कामिनी है, कमज़ोर है, और दूसरी ओर अपने वजूद के लिए लड़ती संघर्षशील नारी है। वह एकाएक वस्तु से व्यक्तित्व में परिवर्तित नहीं होती। सदियों अप्रत्यक्ष मूक संघर्ष के पश्चात् नारी ने जिस प्रकार, क्रमशः अपने व्यक्तित्व को खोजा और संवारा है, उसे लेखिका ने शनैः शनैः अपनी कृतियों में परत दर परत भिन्न-भिन्न

कोणों से उघाड़ा है।"[1] नारी मानसिकता को पूरी शक्ति के साथ कृष्णा सोबती ने उभारा है। अलग-अलग मनोवृत्ति वाली स्त्रियों की परस्पर विरोधी प्रतिक्रियाओं को व्यक्त किया है।

पुरुष प्रधान समाज में नारी को अपनी पहचान बनाना और अपने आत्मसम्मान को बनाए रखना काफी मुश्किल है। लेकिन कृष्णा सोबती ने अपनी प्रतिभा और आत्मविश्वास के बल पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपना स्थान अनायास ही बनाया है। कृष्णा सोबती के ही शब्दों में "भारत की कामकाजी स्त्री अपनी पारम्परिक लीक को फलाँगकर एक व्यक्ति बनने की कोशिश में है। स्त्रीत्व की भूमिका में मात्र बच्चे बनाना, परिवार का पालन पोषण ही अब महिमामय आदर्श नहीं। भारतीय स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता एक बड़े पैमाने पर लोकतान्त्रिक राष्ट्र के लिए गुण है। जीवन-स्तर ऊँचा करने में और वैचारिक तथा उत्पाद इकाई के स्वरूप में उभरने की स्त्री की क्षमता सन्देह से परे हैं।"[2] आज भी परिवार स्त्री से यही चाहता है कि वह कभी भी भय और लज्जा से मुक्त न हो। परिवार के सदस्यों में पुरुष का प्राधान्य रहता है। इसी कारण नारी पर अत्याचार होता है। वह मजबूरी और असहायता से इन अत्याचारों को सहती है किन्तु अब वह अन्याय और अत्याचारों के खिलाफ उठती दिखाई देती है, इस ओर भी कृष्णा सोबती ने संकेत किया है।

---

1. रोहिणी अग्रवाल - एक नज़र कृष्णा सोबती - पृ. 31
2. कृष्णा सोबती - शब्दों के आलोक में - पृ. 61

कुल मिलाकर कृष्णा सोबती की रचनाओं के बारे में हम यह कह सकते हैं कि कृष्णा सोबती की हर रचना हिंदी साहित्य में एक घटना के रूप में आई और पाठकों के मन-मस्तिष्क को झकझोर कर सदा के लिए हृदय में प्रतिष्ठित हो गई है।

1.1.11 मन्नू भंडारी

अपनी रचनाओं के ज़रिए लेखिका मन्नू भंडारी ने व्यापक जीवन दृष्टि का परिचय दिया है। अनुभव की सच्चाई, गहरी संवेदनशीलता और प्रस्तुति का अपना मौलिक कलात्मक अन्दाज़ उन्हें हिन्दी की श्रेष्ठ कथाकार सिद्ध करती हैं। मन्नू ने अपनी अधिकांश रचनाओं में नारी मन के अनकहे मूक सच को बड़ी तटस्थता और ईमानदारी के साथ उतारा है। अब तक उनके पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वे हैं 'मैं हार गई', 'एक प्लेट सैलाब', 'यही सच है', 'तीन नीगाहों की एक तस्वीर' और 'त्रिशंकु'।

मन्नू की प्रथम कहानी 'मैं हार गई' 1957 में प्रकाशित हुई, जिसके बारे में वे खुद लिखती हैं कि - "1957ई में 'मैं हार गई' नाम से ही राजकमल प्रकाशन से मेरा पहला कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ। 'कहानी' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में अपनी पहली कहानी का छपना और राजकमल जैसे प्रतिष्ठित प्रकाशन से अपना पहला कहानी संग्रह प्रकाशित होना इस उपलब्धि का अध्याय भी उस समय उतना नहीं हुआ था, पीछे मुड़कर देखने पर जितना आज लगता है।"[1] इस प्रकार मन्नू

---

1. मन्नू भंडारी - नायक खलनायक विदूषक - भूमिका से - पृ. 9

भंडारी लिखती रही। उनकी एक के बाद एक बेहतरीन कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगीं और इनकी रचनाओं को पसन्द करने वालों का एक अच्छा खासा वर्ग हो गया।

मन्नू भण्डारी में भारतीय समाज के निम्न मध्यवर्गीय परिवार और परिवेश को पकड़ने की गहरी समझ है। जीवन-जगत की विसंगतियाँ उनकी रचनाओं से ज़ाहिर हो जाती हैं। इस प्रकार उन्होंने अपनी कहानियों के ज़रिए मध्यवर्गीय समाज के यथार्थपरक चित्रण से पाठकों के मन को अपनी गहरी संवेदना से सराबोर कर दिया है। मन्नू की कहानियों के बारे में निर्मला जैन का कहना है कि - "उनकी इन आरम्भिक कहानियों की खासियत यह है कि इनमें एक ऐसी शख्सियत उभरती दिखाई पड़ती है, जो काफी आत्मसजग और चौकन्नी है - अपनी रचनाओं के कथ्य और रचनात्मक विन्यास दोनों के बारे में। यही वजह है जिसके कारण उनकी कहानियों का ग्राफ उत्तरोत्तर ऊँचाई की तरफ बढ़ता गया। मन्नू ने आगे चलकर दो बेहद सफल उपन्यास लिखे। एकाध नाटक रूपान्तर भी किया, परन्तु कहानियाँ वे लगातार पूरी निष्ठा से लिखती रहीं।"[1] अपनी रचनाओं के ज़रिए मन्नू जी ने जिन्दगी की विद्रूपताओं, विषमताओं और विकृतियों को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

मन्नू जी के उपन्यासों में आपका बंटी (1971) और महाभोज (1979) काफी चर्चित है।

---

1. निर्मला जैन - कथा समय में तीन हमसफर - पृ. 35

'एक इंच मुस्कान' उपन्यास मन्नू और उनके पति राजेन्द्र यादव के संयुक्त लेखन का परिणाम है। प्रस्तुत उपन्यास के पुरुष पात्रों को यादव जी ने और स्त्री पात्रों को मन्नू जी ने सँवारा था। मन्नू भण्डारी ने अपने इस उपन्यास के विषय में खुद लिखा है - "इसमें सन्देह नहीं कि पहला अध्याय मुझे स्वयं बहुत, बहुत पसन्द आया और दूसरा, अच्छा ही नहीं, आशा से अधिक अच्छा लिखा गया। वहीं तीसरा और चौथा अध्याय शिथिल बन गया।"[1] उपन्यास का पहला भाग राजेन्द्र यादव ने और दूसरा मन्नू ने लिखा है। इसकी कथावस्तु अमर रंजना और अमला नामक तीन प्रमुख पात्रों के आस-पास घूमती है। पारिवारिक जीवन के दरार, विक्षिप्तता आदि को लेखिका ने बड़ी ही कुशलता से बयान किया है।

'आपका बंटी' मन्नू का श्रेष्ठ उपन्यास है, जिसमें एक छोटे बच्चे की जिन्दगी को केन्द्र में रखकर पूरे उपन्यास की रचना की है। उपन्यास में पत्नी शकुन और पति अजय के बीच मनमुटाव और अलगाव की स्थितियाँ उत्पन्न हुईं जो बच्चे बंटी के जीवन पर गहरा प्रभाव डालती हैं। इस उपन्यास के बारे में डॉ. भगवतीशरण मिश्र का कहना है कि "मन्नू भण्डारी की सफलता इसमें है कि उन्होंने बंटी की मानसिकता का, अपनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि का भरपूर उपयोग कर अत्यन्त ही सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यह आज के मध्यवर्गीय जीवन जहाँ विवाह टूटन का शिकार हो जाता है कि बच्चे-बच्चियों के घुटन एवं एकाकीपन तथा संत्रास का एक मर्मस्पर्शी दस्तावेज़ है। बंटी की कहानी केवल अपनी नहीं बल्कि वह सभी ऐसे

---

1. मन्नू भण्डारी एवं राजेन्द्र यादव - एक इंच मुस्कान - पृ. 238

बच्चे-बच्चियों का विश्वसनीय प्रतिनिधि बन कर उभरा है।"[1] समाज में तलाक बेहद उलझी हुई समस्या है। जिसका ज़्यादा असर बच्चों पर ही अधिक पड़ता है। परिवार में उत्पन्न हलचल का चित्रण लेखिका ने बड़ी खूबी से किया है। बंटी की पीड़ा पाठकों में करुणा जगाती है। इसके साथ नारी की अस्तित्व-चिन्ता परम्परागत पारिवारिक ढाँचे को कैसे चंचल बनाती है, इस ओर भी पाठकों को उपन्यास ले जाता है।

'महाभोज' एक राजनीतिक उपन्यास है। आज लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनाव राजनीति का केन्द्र बिन्दु है। इसे आधार बनाकर मानवीय त्रासदी, करुणा और पीड़ा के यथार्थ को अंकित करने की सफल चेष्टा उन्होंने इस उपन्यास में की है। यह उपन्यास वर्तमान राजनीति के दूषित प्रभाव को व्यापक रूप से उजागर करता है। इस उपन्यास के संबन्ध में गुलाबराव हाड़े लिखते हैं कि - "चुनाव-संयत्र में तब्दील हो जाने की वजह से जिस प्रकार की देश-दशा का निर्माण हुआ है उसके बीच आम आदमी की त्रासदी, करुणा, ममता, संघर्ष और पीड़ा की सच्चाई को एक से अनेक संदर्भों के साथ अभिव्यंजित करने का सशक्त प्रयास 'महाभोज' में लेखिका ने किया है। राजनीतिज्ञों की ऊपरी महानता, औदात्य तथा गंभीरता की आड़ में जो वास्तविक तस्वीर है वह छोटे से छोटे ब्यौरे के माध्यम से उभारी गई है, ताकि हम इस मुद्दे पर सोचे कि देश के राजनीतिज्ञों का यह चरित्र कहाँ जाकर विराम लेगा और इस दरमियन देश के आम आदमी की नियति क्या होगी?..."[2]

---

1. डॉ. भगवतीशरण मिश्र - हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार - पृ. 379
2. गुलाब राव हाड़े - मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य - पृ. 173

याने लेखिका ने अपने इस उपन्यास में राजनीतिज्ञों के महत्, औदात्य और गांभीर्य के खोल के भीतर से झाँकती वास्तविकता की घिनौनी तस्वीर को बड़े ही सूक्ष्मता से पकड़ा है।

महान कथाकार शरतचन्द्र की कहानी 'स्वामी' पर आधारित है मन्नू का एक ओर लघु उपन्यास 'स्वामी'। त्रिकोण प्रेमकथा को अभिव्यंजित करनेवाला यह उपन्यास एक ऐसी युवती की अन्तर्द्वन्द्व की कहानी जो सम्बन्धों की मनोवैज्ञानिक उलझनों में लगातार फँसती चली जाती है। इस उपन्यास के सन्दर्भ में मन्नू भण्डारी का कहना है कि - "शरतचन्द्र की कहानी आत्मधिक्कार और पापबोध की कहानी थी, मैं ने उसे एक सहज मानवीय अन्तर्द्वन्द्व का रूप दिया है।"[1] यह लघु उपन्यास लिखने के कारण शरतचन्द्रजी के साथ-साथ मन्नू जी का नाम भी हिन्दी साहित्य क्षेत्र में फैल गया।

अपनी पूर्ववर्ती महिला लेखिकाओं की चेतना दृष्टि से भिन्न मन्नू की नितांत भिन्न चेतना दृष्टि, साफ सुथरे तौर पर उनकी रचनाओं में झलकती हैं। इस प्रकार उनकी रचनाएँ मध्यवर्गीय समाज के यथार्थ परक चित्रण से पाठकों के दिलों में गहरी संवेदना प्रधान करती हैं।

1.1.12 उषा प्रियंवदा

उषा प्रियंवदा नयी कहानी की सबसे प्रतिभाशाली लेखिका है। उन्होंने अपनी कहानियों में भारतीय नारी की दिशाहीनता, दुविधाग्रस्तता उसकी व्यक्तिगत

---

1. मन्नू भण्डारी - स्वामी (भूमिका) से

कुंठा, पीड़ा, अतृप्ति आदि का निरूपण किया है। प्रेम और विवाह तक सीमित इनकी नारी परिकल्पना, गृहस्थ और दाम्पत्य जीवन की निस्सारता सिद्ध करती है।

उषा प्रियंवदा के कहानी संग्रहों में 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल', 'कितना बड़ा झूठ', 'एक कोई दूसरा', शून्य तथा अन्य रचनाएँ आदि हैं। उन्होंने 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा', 'अन्तर्वंशी' जैसे उपन्यास लिखकर हिन्दी कथा साहित्य में अपना स्थान प्राप्त किया है। उषा जी ने अपने जीवन की व्यापक अनुभूतियों को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। अतः यह कहना उचित होगा कि अपनी रचनाओं में उन्होंने भावाभिव्यक्ति में वैचारिकता, भावुकता में बौद्धिकता और अनुशासन की क्षमता का चित्रण प्रस्तुत करके गहरे यथार्थबोध का परिचय ही दिया है।

'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' और 'पैरेम्बुलेटर' की रचना के साथ उषा जी की कहानियों में परिपक्वता आनी शुरु हुई। इन कहानियों में समस्या का आधार आर्थिक तंगी के कारण रिश्तों की प्रकृति में आनेवाला बदलाव है। "उषा प्रियंवदा नयी कहानी के दौर (1954-1964ई) की लेखिका है। 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी पहली बार सन् 1956ई में 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। 1956 के अंक में ही इनकी एक और कहानी 'पैरेम्बुलेटर' भी प्रकाशित हुई थी। उषा प्रियंवदा की कुल 45 कहानियाँ प्रकाशित हैं, पर कहानी की दुनिया में उनकी पहचान सिर्फ 'वापसी' (नई कहानियाँ अगस्त 1961ई) कहानी से बनती है।"[1]

---

1. वगर्थ - अंक 190, मई 2011, भारतीय भारत परिषद, कोलकत्ता संपादक - एकान्त श्रीवास्तव, कुसुम सोसानी

उषाजी के इन दोनों कहानियों का कथानक अलग है लेकिन समस्या एक है, वह है बेरोजगारी की समस्या। यह समस्या एक कहानी में भाई-बहन के बीच है तो दूसरी में पति-पत्नी के बीच है। उन्होंने अधिक स्त्री-पुरुष संबन्धी कहानियाँ ही लिखी हैं जो आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर भी है। आधुनिक व्यक्ति जीवन के संत्रास, एक तनाव को उन्होंने अपनी कहानियों के ज़रिए अभिव्यक्त किया।

उषा प्रियंवदा के पाँच उपन्यासों में 'पचपन खंभे लाल दीवारें' काफी लोकप्रिय हुआ। इस उपन्यास की नायिका सुषमा अपनी खुद की जिन्दगी जी नहीं पाती। वह अपने परिवारवालों के लिए जीती है। विदेश में भी नारी की स्थिति वही है, जैसे अपने देश में होती है। विदेश में स्त्री संबन्धी दृष्टि में कोई आधुनिकता नहीं आ पायी। अपने इस विचारों को लेखिका ने 'सकोगी नहीं राधिका' उपन्यास की नायिका राधिका के ज़रिए किया है। 'शेष यात्रा' उषा प्रियंवदा का एक और महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह उपन्यास नारी जीवन की त्रासद स्थितियों को बयान करता है। उच्च मध्यवर्गीय प्रवासी भारतीय समाज को इस उपन्यास में अपने तमाम अन्तर्विरोधों व्यामोहों और कुण्ठाओं सहित उभारा गया है "शेष यात्रा की 'अनु', बदलते समय और सोच को प्रतिबिंबित करती है। आज के इस दौर में तलाकशुदा और पति द्वारा उपेक्षित लड़कियाँ किस तरह अपना 'स्व' ढूँढ़ने लगी हैं। इसका सफल चित्रण उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास में किया है।"[1] उपन्यास में आधुनिक भारतीय नारी की एक ऐसी तस्वीर खींची गयी है जो कठिन और

---

1. डॉ. ज्योति किरण - हिन्दी उपन्यास और स्त्री जीवन - पृ. 57

विपरीत परिस्थितियों में भी अपने लिए नया और सार्थक मार्ग चुन पाने में समर्थ है। नायिका अनु के आन्तरिक और बाह्य संघर्ष को गहरी आत्मीयता और संवेदनशीलता के साथ अंकित करने में उषा जी को पर्याप्त सफलता मिली है।

सदी के अन्तिम वर्ष 2000 में प्रकाशित उषा प्रियंवदा का एक और उपन्यास है 'अन्तर्वंशी'। इस उपन्यास में उन तमाम भारतीय नारियों की दास्तान है, जिनके पिताओं ने अपनी बेटियों को अमेरिका में इसलिए ब्याहा ताकि वह अटूट सम्पदा को लूट सके और एक सुखमय जीवन बिताए। परन्तु ऐसा होता नहीं है। उन सबके मोहभंग का अटूट सिलसिला 'अन्तर्वंशी' में है।

उषा प्रियंवदा ने सर्वथा नए अनुभव जगत को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। उषा जी का लेखन अभी भी जारी है। उन्हें जल्दबाजी बिल्कुल पसन्द नहीं। उनकी लेखनी में अनुभव की प्रामाणिकता और गहन संवेदनशीलता का संस्पर्श है।

1.1.13 कृष्णा अग्निहोत्री

कृष्णा अग्निहोत्री उन श्रमजीवी महिला रचनाकारों में हैं, जिन्होंने अनवरत संघर्षशीलता से कामियाबी हासिल की, लेखन में भी और जीवन में भी। शोषित, पीड़ित और लुहुलुहान औरतों के ज़ख्मों को उन्होंने बहुत करीब से देखा है और महसूस भी किया है। विवाह की असफलता समाज की निंदा, अपनों की अवहेलना और अभावों की पीड़ा को उन्होंने अपने जीवन में अनुभव किया इन सब के

बावजूद भी वे लगातार लिखती रहीं। 'तीन मछेरे', 'याहि बनारसी रंगा बा', 'गलियारे', 'विरासत', 'दूसरी औरत', 'सर्पदंश', 'जिंदा आदमी', 'टीन के घेरे', 'जैसियाराम', 'अपने-अपने कुरुक्षेत्र', 'पंछी पिंजरे में', 'नपुंसक', 'मेरी प्रिय कहानियाँ' आदि उनके कहानी संग्रह हैं जबकि 'बात एक औरत की', 'टपरेवाले', 'अभिषेक', 'कुमारिकाएँ', 'नीलोफेर', 'टेसू की टहनियाँ', 'बौनी परछाइयाँ', 'निष्कृति', 'मैं अपराधी हूँ', 'बित्त भर की छेकरी' आदि इनकी प्रसिद्ध औपन्यासिक कृतियाँ हैं।

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था रखने वाली कृष्णा अग्निहोत्री ने मानवीय मूल्यों के प्रति सघन लगाव व्यक्त किया है। आधुनिक बोध से संपन्न परंपरा-पोषित नारी की अस्मिता की खोज इनकी कृतियों में दिखाई देती है। इन्होंने स्त्री को देवी और भोग्या से परे औरत माना और एक औरत होने के नाते मानव के सारे मानवीय अधिकार सुलभ करने की आवश्यकता अपने साहित्य-कर्म के माध्यम से जतायी हैं। उन्होंने नारी द्वारा नारी पर किये जाने वाले अत्याचारों को भी अपने रचनाओं के ज़रिए अभिव्यक्ति दी हैं। साथ ही पुरुष मेधा समाज की निष्ठुरता की ओर भी इशारा किया है।

दहेजप्रथा आज भी समाज से पूरी तरह मिटा नहीं। वैवाहिक जीवन में नारी आत्महत्याओं का ज़्यादातर कारण ही दहेज-प्रथा से संबन्धित है। कृष्णा अग्निहोत्री की 'चातकी' नामक कहानी एक ऐसी ही कहानी है जिसका सम्बन्ध दहेज-प्रथा से है। सहनशीलता और प्रतिरोध के बीच स्त्री का जीवन किस तरह नष्ट हो जाता है उसे अपनी इस कहानी के ज़रिए लेखिका ने व्यक्त किया है ''कृष्णा

अग्निहोत्री की 'मंगली', 'खुली राह पर बन्द दरवाज़ें', 'स्वाभिमानी', 'सेनानी', 'एक कर्नल की वापसी', 'नपुंसक' तथा 'चातकी' कहानियों में सामाजिक राजनीतिक युगबोध उभरकर सामने आया है। परम्पराओं एवं रूढ़िगत मान्यताओं से मुक्ति का स्वर कृष्णा की कहानियों की प्रमुख विशेषता है। 'नारी मुक्ति आन्दोलन' केवल सैद्धान्तिक रूप में ही भारत की स्वतन्त्र भूमि पर आये हैं, नारी की स्वतंत्रता वा समानता का प्रश्न अभी भी सुलझा नहीं है। कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में नारी-मुक्ति के लिए परिवर्तन की आवश्यकता को स्वीकार किया है।"[1] जीवन के विघटित मूल्यों को गहरी संवेदना के साथ कृष्णा अग्निहोत्री व्यक्त करती हैं। पर प्रश्न चिह्न लगाती स्त्री के पाठकों के सामने आ खड़ी हो जाती है। "कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के भीतर पिसती प्रवंचित नारी की पीड़ा के विरुद्ध गहरे क्षोभा और विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ है। इनकी कहानियाँ अनुभव प्रसूत हैं, इनके पीछे किसी विचारधारा का अनुशासन नहीं है।"[2] कहने का तात्पर्य यह है कि कृष्णा अग्निहोत्री उन महिला लेखिकाओं में हैं जो अपने ईमानदार वैविध्यपूर्ण एवं बहुमुखी लेखन के कारण बहुचर्चित हैं। नारी उत्पीड़न, दाम्पत्य जीवन के अनेक पक्षों के साथ उन्होंने राजनीतिक भ्रष्टाचार पर भी अपना लेखन प्रस्तुत किया है।

कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने उपन्यासों को अपनी गहरी संवेदनशीलता से उल्लेखनीय व आकर्षक बनाया है। 'बात एक औरत' स्त्री-पुरुष के नाजुक सम्बन्धों

---

1. डॉ. मंजुलता सिंह - हिन्दी कहानी में युगबोध - पृ. 77
2. कृष्णा अग्निहोत्री - बात एक औरत की - पृ. 101

को लेकर लिखा गया उनका महत्वपूर्ण उपन्यास है। लेखिका ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से विकसित होती चेतना को एक जागरूक रूप प्रदान किया है। 'मैं अपराधी हूँ' पारिवारिक विघटन से संबन्धित एक उपन्यास है। उपन्यास में यह बताया गया है कि परम्परा से चली आ रही मर्यादाओं, आचरण के नियमों और विधि-निषेधों का मनुष्य आसानी से उल्लंघन नहीं कर सकता। समाज में शान्ति, व्यवस्था व अनुशासन को बनाए रखने के लिए सामाजिक नियन्त्रण आवश्यक होता है। परिवार सामाजिक नियन्त्रण के साधन के रूप में कार्य करता है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में प्रमोद त्रिवेदी का कहना है कि "मैं अपराधी हूँ' यह अपराध बोध वस्तुतः किसमें है? सीमा में या कृष्णा अग्निहोत्री में जिन्होंने सच को सच की तरह प्रस्तुत करने का साहस किया या समाज में जो शर्मिंदगी महसूस कर रहा है? समाज तो आईना है, तो क्या इस दर्पण में जो भी अपनी छवि देख रहा है उसमें अपराध बोध गहरा है? दर्पण तो सच ही बोलता है। इन सारे सवालों के साथ सबसे बड़ा सवाल यह है कि पाठक इन स्थितियों में किसके पक्ष में खड़ा होता है।"[1] कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने इस उपन्यास में पूरे कौशल के साथ सीमा के चारित्रिक विकास का ग्राफ निर्मित किया है जिसमें जीवन का उतार-चढ़ाव है। वाकई कृष्णा अग्निहोत्री का यह उपन्यास पाठकों को यह सोचने के लिए मजबूर कर देता है कि अपराधी कौन है?

---

1. साक्षात्कार 259, जुलाई 2001, मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् का मासिक प्रकाशन (भोपाल), संपादक - आग्नेय, कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास 'मैं अपराधी हूँ' पर प्रमोद त्रिवादी समीक्षा - पृ. 116

कृष्णा अग्निहोत्री का 'कुमारिकाएँ' उपन्यास हिन्दी साहित्य जगत में ज़्यादा चर्चित रहा। इसमें उन्होंने अपनी नारी-भावना को व्यक्त किया है। उपन्यास में शुचिता अपने पति श्रीधर के अत्याचारों को झेलती है। तमाम शैक्षणिक प्रगति और आधुनिकता के दावों के बावजूद भारतीय समाज में स्त्रियों के प्रति वही पुराना और रूढ़ियों से जकड़ा दृष्टिकोण चला आ रहा है। अपने इस उपन्यास के ज़रिए कृष्णा अग्निहोत्री ने इन्हीं रूढ़ियों पुरानी, सड़ी-गली मान्यताओं पर चोट की है। उनके सभी लेखन अन्यों से भिन्न सामाजिक सन्दर्भ के सूक्ष्म रूप प्रस्तुत करने में मौलिक एवं सक्षम है।

1.1.14 शशिप्रभा शास्त्री

स्वातंत्र्योत्तर लेखन में अपने पात्रों एवं विचारों के द्वारा जीवंत स्वरूप लेकर उभरनेवाली लेखिकाओं में शशिप्रभा शास्त्री जी अग्रणी है। वे मानव-जीवन के अत्यधिक करीब हैं। उनका कथा-साहित्य कथ्य की दृष्टि से विभिन्न आयामों को स्पर्श करता है। उनमें पीढ़ी का संघर्ष भी है और आधुनिकता का ज्वार भी। नारी जीवन के अनेक पहलू जैसे उनके कोमल, भावुक और सशक्त भाव, उनके मन के भीतर छिपी इच्छाओं आदि का सूक्ष्म यथार्थपरक निरूपण खुलकर चित्रित करने में लेखिका कामियाब रही है। पुरानी जड़ग्रस्त परंपराओं, मान्यताओं और रूढ़ियों को नकारकर आधुनिक प्रतिमानों तथा नैतिकता के नए मानदंडों को स्थापित करने की ललक इनकी रचनाओं में दिखाई देती है।

शशिप्रभा शास्त्री के आधे दर्जन से अधिक उपन्यास तथा अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनके दो उपन्यास 'सीढ़ियाँ' और 'परछाइयों के पीछे' उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हैं। 'धुली हुई शाम', 'अनुत्तरित', 'दो कहानियों के बीच', 'जोड़ बाकी', 'आहिस्ता बोलिए' आदि इनके कहानी-संग्रह हैं, जबकि 'नावें', 'सीढ़ियाँ', 'परछाइयों के पीछे', 'बरसों के बाद', 'वीरान रास्ते' और 'झरना', क्योंकि, 'कर्करेखा', 'अमलतास', 'हर दिन इतिहास', 'उम्र एक गलियारे की' आदि इनके उपन्यास हैं।

मध्यवर्गीय नारी एकाकीपन को लेखिका ने सटीक अभिव्यक्ति प्रदान की है। अपने-अपने स्वार्थों में आकण्ठ डूबे लोगों के बीच भारतीय नारी की पीड़ा को लेखिका ने यथार्थ रूप में चित्रित किया है। 'धुली हुई शाम' में सीमा अपने पति के मृत्यु के बाद भी दो बच्चों के पालन पोषण में कोई कमी नहीं छोड़ती। जब उसके बच्चे बड़े हो जाते हैं तो वह अपने जीवन में बिल्कुल अकेली पड़ जाती है।

शशिप्रभा शास्त्री ने अपने उपन्यासों का सम्पूर्ण परिवेश सहजता व सादगी से गढ़ा है। जिसके कारण उनके उपन्यास मानव जीवन के अत्यधिक निकट हैं। 'नावें', 'सीढ़ियाँ' जैसे अपने उपन्यासों के द्वारा उन्होंने अपने लेखन की ऊँची सीढ़ियाँ चढ़ी हैं। नारी-जीवन के अनेक पहलूओं को उन्होंने मनोविज्ञान के यथार्थ के साथ उतारा हैं। "शशिप्रभा के उपन्यासों की स्त्री आर्थिक रूप से स्वावलंबी होने पर भी अपने खड़े होने के लिए जमीन नहीं तलाश पाती। उन्होंने ऐसी विवश स्त्री का सृजन किया है जो परंपरागत संहिता से इस हद तक आक्रांत है कि उसकी आड़ में मिले अवमान-अपमान को अपनी नियति मानती है।"[1] शशिप्रभा जी के सभी

---

1. डॉ. वीना रानी यादव - हिन्दी उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति - पृ. 77

उपन्यासों में नारी मनोदशा का सजीव चित्रण मिलता है। उनके उपन्यासों में सब कुछ उपलब्ध होने पर भी नारी किस प्रकार स्वयं के संस्कारों में बंधकर निरंतर दमित और शोषित है, आत्मनिर्भर होकर भी किस प्रकार वह सुख और संतोष से अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकती इसका खुला चित्रण प्रस्तुत होता है।

संक्षेप में कहा जाए तो शशिप्रभा शास्त्री ने निर्मल आधारों पर अपने लेखन की ऊँची सीढ़ियाँ चढ़ी हैं। उनका लेखन किसी वाद या सिद्धान्त की गिरफ्त से दूर, अभिव्यक्ति की नैसर्गिक प्रक्रिया अपनाकर प्रस्तुत हुआ है।

1.2 समकालीन महिला लेखन

समकालीन महिला लेखन में पुरुष वर्चस्व के प्रति रोष, संघर्ष एवं अपनी अस्मिता की स्थापना का मोह और भी बलवत्ती होता दिखाई देता है। समकालीन लेखिकाओं में प्रमुख हैं - मृदुला गर्ग, ममता कालिया, दीप्ति खण्डेलवाल, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, सूर्यबाला, सुधा अरोड़ा, मृणाल पाण्डेय, मेहरुन्निसा परवेज़, निरुपमा सेवती, नासिरा शर्मा, गीतांजली श्री, अनामिका, अलका सरावगी, महुआ माजी आदि। यहाँ जिन महिला लेखिकाओं का उल्लेख छूट गया, उनका साहित्य भी अपने आप में महत्वपूर्ण है। इन सभी ने अपनी रचनाओं में नारी को स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में अंकित करने का प्रयास किया है।

1.2.1 मृदुला गर्ग

मृदुला गर्ग समकालीन हिन्दी कथा जगत् में एक वरिष्ठ और प्रतिष्ठित नाम है। अब तक उनके सात उपन्यास और लगभग नब्बे कहानियाँ प्रकाशित हैं।

उपन्यासों में 'चित्तकोबरा' व 'अनित्य' हिन्दी साहित्य जगत में विशेष चर्चित रहें। कहानियों में 'हरी बिन्दी', 'डैफोडिल जल रहे हैं', 'वह मैं ही थी', 'शहर के नाम', 'समागम' आदि चर्चित कहानियाँ हैं। उन्होंने अपने कथा साहित्य में नारी मन के प्रेम और वासनात्मक जीवन को ही प्रमुखता दी है। "मृदुला गर्ग एक सशक्त लेखिका हैं। फिर भी इनका लेखन यौन संबन्धों के चित्रण पर केन्द्रित है। इनकी कहानियों में यौन प्रश्नों, कुंठाओं के संदर्भ में नारी की मानसिकता के वास्तविक धरातल पर उतरने का प्रयास है वहाँ उपन्यासों में परिवार समाज के बीच आज की युवती की अस्मिता को खोजने का प्रयास किया गया है।"[1] यानी लेखिका मृदुला गर्ग में स्त्री-जीवन के प्रश्नों से मुठभेड़ करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उन्होंने बड़े साहस के साथ बदले जीवन संदर्भों में स्त्री की बनती हुई मानसिकता को लेकर लिखा है।

'कितनी कैदें' कहानी में उन्होंने सेक्स के जटिल संबन्धों को आधार बनाया है। अपने अस्तित्व की खोज में निकली नारी का चित्रण भी मृदुला गर्ग की कहानियों में है। 'हरी बिन्दी' की नायिका हर नारी के मन में छिपी स्वतंत्रता की चाह को व्यक्त करती है। पति की अनुपस्थिति में उसके सीमित दायरों से बाहर निकलने की पत्नी की जो आकांक्षा है वह इस कहानी में प्रतिफलित है।

उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच का संघर्ष बड़े प्रभावी ढंग से उन्होंने व्यक्त किया है। निम्नवर्ग की निरीहता और भोलेपन को उजागर करनेवाली कहानी है

---

1. डॉ. ओमप्रकाश शर्मा - समकालीन महिला लेखन - पृ. 151

'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी'। उक्त संकलन की कहानियों में आम तथा औसत आदमी के जीवन की कहानियाँ हैं। भारतीय संस्कारों वाली पत्नी की सहनशीलता पर प्रकाश डालने वाली 'दो एक फूल', 'यह मैं हूँ', 'उसकी कराह' आदि रचनाएँ उनकी विषय, वस्तुगत वैभव को दर्शाती हैं। पूँजीपतियों तथा उच्चवर्ग की औपचारिक संस्कृति पर 'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी' तथा इस संग्रह की अन्य कहानियों के माध्यम से लेखिका ने तीखा प्रहार किया है। 'डाफोडिल जल रहे हैं' सन् 1978 में प्रकाशित उनका तीसरा कहानी-संग्रह है। इनमें उनकी तीन लम्बी कहानियाँ संकलित हैं। इन तीनों कहानियों में लेखिका ने मृत्यु चेतना और जीवन अस्तित्व की अनर्थकता की दार्शनिक बात को बड़ी कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त किया है। 1980 में प्रकाशित 'ग्लेशियर से' नामक कहानी संग्रह में उनकी सोलह कहानियाँ संग्रहित हैं। नारी के प्रणय भावों का सूक्ष्म अंकन इसमें किया गया है। 'उर्फ सैम' (1982) की प्रस्तुत कहानी संकलन में विषय की दृष्टि से पति-पत्नी सम्बन्धों की भावहीनता, वृद्धों की जिजीविषा, आर्थिक विषमता, नारी दमन और शोषण आदि विषयों से सम्बन्धित कहानियाँ संग्रहित हैं। सन् 1990 में प्रकाशित संग्रह है 'शहर के नाम'। इस संग्रह की कहानियों में नारी जाति का शोषण, उसकी विडम्बनापूर्ण ज़िन्दगी, उसके संघर्ष तथा विद्रोह को अभिव्यंजित करने का प्रयास लेखिका ने किया है। "वह ध्यान देने योग्य बात है कि मृदुलागर्ग की कहानियों के नारी पात्र समाज व्यवस्था के अन्याय और अत्याचार का प्रतिवाद करते हैं। कहीं प्रतिवाद सांकेतिक है तो कहीं मुखर।"[1] यानी मृदुला जी की कहानियों में नारी की

---

1. सं. विभूतिमिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद (लेख) मृदुला गर्ग की कहानियाँ नारी मुक्ति की सकारात्मक दिशा - डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ - पृ. 44

छटपटाहट उसका द्वंद्व उसकी विवशताओं तथा नारी जीवन के बहुरंगी रूपों का चित्रण हुआ है।

थोड़े अन्तराल के बाद 'समागम' (1998) प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत कहानी संग्रह मृदुला गर्ग की अप्रवासी भारतीयों के विदेश जीवन से संबन्धित है। प्रसिद्ध लेखिका अनामिका के अनुसार "मृदुला गर्ग इधर की उन थोड़ी सी लेखिकाओं में हैं जिन्होंने दुर्लभ तटस्थता के साथ स्त्री के मन पर संक्रमण के कठिन दौर की स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं और उनसे उद्‌भूत बाहरी भीतरी तनावों संघर्षों की सूक्ष्म तीक्ष्ण और सोद्देश्य समझ जनमानस में विकसित की है।"[1] मृदुला गर्ग की कहानियाँ में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में परिवर्तन, विवाह की सार्थकता का खण्डन, शारीरिक पवित्रता का मूल्य, संयुक्त परिवार का विघटन आदि विषयों को लेकर लिखी गई हैं।

'उसके हिस्से की धूप' 1975 में दाम्पत्येतर सम्बन्धों को आधार बनाकर लिखा गया उनका प्रथम उपन्यास है। इसके बाद उनका दूसरा उपन्यास 'वंशज' (1976) लिखा गया। यह उपन्यास दो पीढ़ियों की टकराहट, द्वन्द्व तथा अंतराल को अभिव्यक्ति देता है। 'चित्तकोबरा' (1979) विवादास्पद, किन्तु बेहद लोकप्रिय उपन्यास है। इसमें लेखिका ने नारी-पुरुष के संवेदनशील सम्बन्धों को व्याख्यायित और रूपायित करने का प्रयास किया है। प्रेम, विवाह और सेक्स के कथ्य को लेकर इसकी रचना हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए लड़े जाने वाले अहिंसात्मक आन्दोलन और आतंकवादी कहलाने वाले क्रांतिकारी आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर

लिखा गया उनका उपन्यास है 'अनित्या'। 'मैं और मैं' 1984 में प्रकाशित मृदुला गर्ग का पाँचवाँ उपन्यास है। इस उपन्यास में यह दिखाने की कोशिश की है कि अहं की तुष्टि में संतोष पाने वाली एक लेखिका किस तरह आर्थिक और नैतिक शोषण की शिकार होती है। सन् 1996 में प्रकाशित 'कठगुलाब' उपन्यास में नारी के दमन और शोषण को दिखाते हुए उसके संघर्ष और चेतना को दर्शाया है। संपूर्ण उपन्यास में नारी पर पुरुष द्वारा होने वाले आर्थिक, शारीरिक और बौद्धिक शोषण तथा आत्मनिर्भरता का चित्रण है।

हिन्दी कथा साहित्य में विशेषकर महिला कथाकारों में मृदुला गर्ग की अपनी एक अलग पहचान है। वे किसी विशेष विचारधारा से प्रेरित न होकर वैयक्तिक और सामाजिक अनुभवों से प्राप्त जीवन दृष्टि के आधार पर लिखती हैं। उनकी कलात्मक ऊर्जा को किसी भी रूप में नकारा नहीं जा सकता। एक बौल्ड लेखिका के रूप में भी उनको उच्च श्रेणी प्राप्त है।

1.2.2 ममता कालिया

ममता कालिया लेखन के सीमित दायरे को पसन्द नहीं करती हैं। इसलिए उनका रचना-संसार परिवार की सीमाओं में न रहकर राजनीतिक विसंगतियों को भी चित्रित करता है। 'छुटकारा', 'सीट नम्बर छह', 'एक अदद औरत', 'प्रतिदिन', 'उनका यौवन' आदि उनके कहानी संग्रहों हैं जबकि 'बेघर', 'नरक-दर-नरक', 'लड़कियाँ', 'प्रेम कहानी' आदि उनके उपन्यास हैं।

नारी मुक्ति आन्दोलन की सशक्त लेखिका के रूप में ममता कालिया का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने नारी जीवन के सुख-दुख को देखा परखा और उनको कलात्मक वाणी दी। नियति की चपेट में फँसकर नित्यप्रति बदलते रहनेवाले परिवारों के कठोर संघर्ष की कहानी इन्होंने सुनायी हैं। "हिन्दी की सुपरिचित लेखिका ममता कालिया की कहानियों में शिक्षित मध्यवर्गीय नारी की आशाओं, आकांक्षाओं संघर्षों और स्वप्नों का यथार्थ परक अंकन हुआ है। ममता कालिया हिन्दी के उन कथाकारों में उल्लेखनीय हैं जिन्होंने मध्यवर्गीय भाव बोध को अपनी कहानियों का विषय बनाते हुए भी उनकी सीमाओं का अतिक्रमण किया है। घर की चार दीवारी में कैद नारी की मुक्ति आकांक्षा और उसका संघर्ष ममता कालिया की अधिकांश कहानियों में प्रस्थान बिन्दु है।"[1] ममता कालिया ने स्त्री-पुरुष संबन्धों के विविध स्तरों को अत्यन्त सूक्ष्मता और प्रामाणिकता से चित्रित किया। उनकी कहानियों में हृदय को स्पर्श करने की पूरी शक्ति है।

लीक से हटकर ममता कालिया ने साहसपूर्ण ढंग से उपन्यास लिखे हैं। उनके अधिकांश उपन्यास भोगे हुए यथार्थ पर ही आधृत प्रतीत होते हैं। 1971 में प्रकाशित उनका पहला उपन्यास है 'बेघर'। उन्होंने यौन शुचिता की अवधारणा को चुनौती दी है। ममता कालिया के 'बेघर' स्त्री का विवाह से पूर्ण कुँवारी होने की धारणा पर प्रश्न करता है। "पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का कुँआरापन केवल उसके पति के लिए ही है, किन्तु ऐसी मान्यता पुरुष पर लागू नहीं होती। पुरुष विवाह से

---

1. ममता कालिया - प्रतिदिन (कहानी संग्रह) फ्लाप से

पूर्व कहीं भी स्त्री के साथ शारीरिक सम्बन्ध बना सकता है, किन्तु एक औरत के लिए यह संभव नहीं। स्त्री के लिए समाज द्वारा यौन शुचिता के मानदण्ड निर्धारित किए गए हैं।"[1] पुरुष चाहता है कि उसकी विवाहिता का विवाह-पूर्व किसी और व्यक्ति से सम्बन्ध नहीं हुआ हो। विवाहोपरान्त भी वह हर तरह से केवल उसकी ही रहकर रहें लेकिन पुरुष के साथ यह बन्धन कतई नहीं है। यह दोहरा मापदंड ममता कालिया को पसन्द नहीं है। इस उपन्यास के ज़रिए स्त्री पुरुष के इस दोहरे मापदंड पर लेखिका प्रश्न चिह्न लगाती हैं।

ममता कालिया के अन्य उपन्यास हैं 'नरक दर नरक', 'साथी', 'लड़कियाँ', 'एक पत्नी के नोट्स', 'दौड' आदि। उपन्यास 'नरक दर नरक' में नरक बनते आधुनिक समाज का चित्रण है। इस उपन्यास के ज़रिए ममता कालिया यह मानकर चलती हैं कि आज की सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था नरक के रूप में परिवर्तित हो चुकी है। निश्चय ही 'नरक दर नरक' उपन्यास समाज के इस पक्ष को उजागर करने में सफल हुआ है। 'एक पत्नी के नोट्स' इसमें संदीप नामक आई.ए.एस. पदाधिकारी और उसकी व्याख्याता पत्नी के पारिवारिक जीवन की कहानी कही गई है। इसमें अधिकारी के हाथों पीड़ित पत्नी का चित्र दिखाया गया है।

कुल मिलाकर कहा जाए तो ममता कालिया की रचनाएँ इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि इनमें सम्बन्धों के रहस्यमय और शुद्ध मानसिक आधार के बदले

1, (सं) प्रो. श्रीराम शर्मा - समकालीन हिन्दी साहित्य विविध विमर्श समकालीन हिन्दी महिला कथाकारों का नारी विमर्श - डॉ. सुखविन्दर कौर बाट - पृ. 101

एक ठोस और वास्तविक परिस्थितियों के भीतर संघर्ष करती और टूटती हुई इकाइयों का मार्मिक स्वरूप खड़ा किया है। जिसके कारण उनकी रचनाएँ सामान्य पाठक तक अपनी पहुँच बनाने में सफल हैं।

1.2.3 दीप्ति खंडेलवाल

दीप्ति खंडेलवाल के कथा साहित्य का क्षेत्र सीमित है लेकिन भाषा शैली के कारण उल्लेखनीय अवश्य है। उनके कहानी संग्रहों में पारिवारिक विघटन की अभिव्यक्ति से भरपूर कहानियाँ हैं। 'धूप के अहसास', 'सलीब पर', 'दो पल की छाँह', 'नारी मन' आदि उनके कहानी संग्रह है तो 'प्रिया', 'वह तीसरा कोहरे' और 'प्रतिध्वनियाँ' उनके उपन्यास हैं।

उनकी 'देह से परे' कहानी में विवाहोत्तर जीवन में तीसरे की रचनात्मक भूमिका और फलस्वरूप टूटते पति पत्नी संबन्ध को दिखाया गया है। 'हव्वा' कहानी में लेखिका समकालीन परिवेश में नारी जीवन सामना करनेवाले अनेक प्रश्नों पर बल देती हैं। 'क्षितीज' कहानी के पति-पत्नी अविश्वास के कारण एक दूसरे से दूर होते जाते हैं। ऐसा ही पति-पत्नी के टूटते बिखरते सम्बन्धों को चित्रित करनेवाली दीप्ति खण्डेलवाल की एक ओर कहानी है 'आक पारो-पुरवैथा'। इस कहानी में पति के निकट पत्नी का अस्तित्व सिर्फ शरीर तक ही है। "दीप्ति जी ने संवेदनाओं और रिश्तों की गहरी घाटियों में जिस गहराई तक उतरकर देखा है और उसे जिस बेबाकी से व्यक्त किया है, वह सब पढ़कर पाठक अद्‌भुत, विस्मित सा रह जाता है। उनके कथानकों में मानसिक यंत्रणाओं के इतने अंधे-कुए हैं, जिनके

भीतर पहुँचकर सारे सम्बन्धों व रिश्तों का दम घुटने लगाता है।"[1] अकेलापन, अधूरापन, नारी जीवन की यंत्रणा, गरीब आदमियों की घुटन आदि को दीप्ती खण्डेलवाल ने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। संवेदनाओं की गहरी भावुकता से जुड़ी हुई उनकी लेखनी अभिव्यक्ति के स्तर पर इतना जोश दिखाती है कि समाज के सारे झूठे आदर्श सामने खड़े हो जाते हैं।

उन्होंने नारी स्वतंत्रता का स्वर ऊँचा किया है और वह कहती हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात् बीते इतने लम्बे समय के पश्चात् भी 'नारी स्वातंत्र्य की कल्पना निरर्थक है क्योंकि आज भी नारी सामाजिक पिछड़ेपन के कारण समाज में असुरक्षित है और वर्जनाओं की शिकार हो रही है। इस प्रकार दीप्ति खण्डेलवाल की रचनाएँ मानवीय संबन्धों के साथ-साथ स्त्री जीवन यथार्थ को व्यक्त करने में भी सक्षम हैं।

1.2.4 मैत्रेयी पुष्पा

मैत्रेयी पुष्पा समकालीन महिला लेखन का एक मज़बूत आधार है। उन्होंने सिर्फ मध्यवर्ग का ही नहीं बल्कि आदिवासी लोगों का जीवन करीब से देखा है। ग्राम्य जीवन मैत्रेयी का केन्द्र बिन्दु रहा है। उनकी नारी चेतना मजबूत एवं संपन्न है। नारी जीवन की लगभग सभी समस्याओं को उजागर करने की कोशिश उन्होंने की है। महिला लेखन के सन्दर्भ में मैत्रेयी का कहना है कि "नई सदी में स्त्री लेखन कहाँ खड़ा होगा, आलोचना के क्षेत्र में इस बात पर किसी ने गौर किया है? अब

---

1. डॉ. अजिता के नायर - सत्तरोत्तर हिन्दी कहानियों में बदलते मानवीय संबन्ध - पृ. 79

सन्देह करने की ज़रूरत नहीं, स्त्री रचनाकारों ने बंधे-बधाए दायरे तोड़कर अपनी रचनाधर्मिता और अभिव्यक्ति को ऐसा स्वर दिया है, जिसे अनसुना करना समीक्षा विधा के लिए कठिन पड़ेगा"[1] यानी मैत्रेयी पुष्पा ने अपने लेखन के ज़रिए नारी व्यक्तित्व को समाज में प्रतिष्ठा दिलाकर समाज में अपनी भूमिका निभाना चाहती है। वह अपने कर्तव्यों के प्रति गंभीर भी है और सामाजिक नैतिक, राजनैतिक जिम्मेदारियों को स्वीकारती भी है।

मैत्रेयी ने अपनी कहानियों में नारी मन को मुख्य रूप से रखा है। नारी मन की सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति उनकी कृतियों की पहचान है। नारी शरीर, नारी मन और नारी भावनाओं की अपनी विशेषता होती है। जिसे उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। "उनकी रचनाओं में स्त्रियों के मुद्दे विशेषकर ग्रामीण स्त्रियों के मुद्दे केन्द्रीय बने जो अब तक हाशिए पर पड़े हुए थे। स्त्री की अस्मिता से जुड़े सवालों को कथा साहित्य के परिदृश्य में लेखिका ने उठाया है।"[2] मैत्रेयी ने स्त्री के जन्म से लेकर बुढ़ापे तक की चर्चा करके उनके विविध उदाहरण देकर अपनी रचनाओं में विविध पात्रों को निर्मित करके नारी प्रश्नों के बारे में विचार किया है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में भी नारी जगत के प्रश्नों को उजागर करने का प्रयास किया है। उनका उपन्यास 'बेतवा बहती रही' संपूर्ण नारी जाति का

---

1. मैत्रेयी पूष्पा - खुली खिड़कियाँ - पृ. 165
2. संग्रथन - अप्रैल 2012 (सं), डॉ. एम.एस. विनयचन्द्रन, अंक 10, हिन्दी विद्यापीठ केरल की मुख्य पत्रिका (मासिक)

प्रतिनिधित्व करता है। "बेतवा बहती रही' इस शीर्षक से भी मैत्रेयी ने जो समर्पकता दिखाई है वह यह कि नदी जिसे प्रकार बहते हुए गंदगी को साफ करती हुई चलती है, आगे बढ़ती है। उसी प्रकार स्त्री भी जीवन में दुःखों को जो गलत विचार है उन्हें छोड़कर अच्छे विचारों के साथ आगे बढ़ती हैं।"[1] अपने इस उपन्यास में उन्होंने नारी को केन्द्र में रखा। उर्वशी उपन्यास का प्रमुख पात्र है। उसके माध्यम से लेखिका भारतीय समाज में महिलाओं का क्या स्थान है उसे बयान करती है।

सन् 2000 में प्रकाशित 'इदन्नमम' साहित्य जगत में काफी चर्चित रहा। मज़दूर तथा किसानों की बेबसी कहने वाले इस उपन्यास में एक कुँआरी लड़की समाज व्यवस्था के खिलाफ किस प्रकार संघर्ष करती है, उसका बयान है। इस उपन्यास से मैत्रेयी को एक उल्लेखनीय उपन्यासकार के रूप में ख्याती मिली।

'चाक' में लेखिका ने पुरुष प्रधान ग्रामीण समाज में स्त्री का क्या स्थान है उसे दिखाया है। 1997 में लिखा गया 'चाक' कृषि जीवन का यथार्थ चित्रण करने में कामियाब रहा। 1999 में प्रकाशित 'झूला नट' का वैचारिक पक्ष स्त्री विमर्श है। ग्रामीण महिला जीवन की समस्याओं को उपन्यास में लेखिका ने व्यक्त किया है। मैत्रेयी पुष्पा का एक और उपन्यास है 'अल्मा कबूतरी'। यह उपन्यास हिन्दी कथा जगत् में मील का पत्थर माना जाता है। उपन्यास में औरतों और वंचितों के संघर्ष को प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उपन्यास का परिवेश कबूतरा नामक अपराधी समझी जाने वाली जनजाति से संबन्धित है। सभ्य समाज द्वारा इन जन जातियों पर किये

---

1. डॉ. शोभा यशवंते - मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी जीवन - पृ. 90

जाने वाले अत्याचार उपन्यास में दिखाया गया है। लेखिका ने इसमें कबूतरा समाज के संपूर्ण जीवन-संघर्ष की अभिव्यक्ति की है।

'अगनपाखी' उपन्यास मैत्रेयी का स्मृति-दंश नामक लघु उपन्यास का नया रूप हैं। इस उपन्यास में, समाज में स्त्री शोषण किस तरह होता है, उसे स्पष्ट किया है तो 'विज़न' (2002) के ज़रिए लेखिका ने स्त्री विमर्श का नया रूप उभारा है। इसमें भी नारी शोषण, संघर्ष और साहस की कथा है। 'कही ईसुरी फाग' में लेखिका ने लोक संस्कृति का गहरा अध्ययन कर लोक कवि ईसुरी के जीवन के रहस्यों का उद्‌घाटन करने का प्रयास किया है। 'कस्तूरी मंडली बाई', 'गुडिया भीतर गुडिया', दोनों उनके आत्मकथात्मक उपन्यास हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याओं का उद्‌घाटन किया है।

मैत्रेयी पुष्पा ने नारी के संदर्भ में समय तथा समाज के गंभीर मसलों को लगातार उठाया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी के भोगे हुए यथार्थ को दर्शित किया है। आधुनिक युग में हर व्यक्ति की यह कोशिश है कि वह सफल, सुखमय जिन्दगी जिए। मैत्रेयी पुष्पा इस तरह के विचार कृतियों के माध्यम से पाठकों के सम्मुख रखना चाहती है।

1.2.5 चित्रा मुद्‌गल

समकालीन कथा-लेखन के सक्रिय और सशक्त लेखिकाओं में एक नाम चित्रा मुद्‌गल का है। उन्होंने अपने लेखन के लिए असाधारण लोकप्रियता अर्जित

की और काफी चर्चित रहीं। कहानी-लेखन चित्रा मुद्गल के अनवरत जीवन संघर्ष का एक जरूरी हिस्सा है। अब तक चित्रा मुद्गल के तेरह कहानी संग्रह, चार उपन्यास और दो वैचारिक संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। 'अपनी वापसी', 'इस इमाम में', 'जहर ठहरा हुआ', 'लाक्षागृह', 'ग्यारह लंबी कहानियाँ', 'जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं' आदि इसके कहानी-संग्रह हैं जबकि 'दौड़', 'एक ज़मीन अपनी', 'अवाँ' आदि इनके उपन्यास हैं। 'मेरी रचना यात्रा', 'तटखाने में बन्द आईनों के अक्स', 'असफल दाम्पत्य की कहानियाँ' आदि पुस्तकों का संपादन भी किया है।

चित्रा मुद्गल की कहानी 'अपनी वापसी' में पत्नी आधुनिकता से समंजस्य स्थापित न कर जाने के कारण बच्चों व पति द्वारा अपहास का पात्र बन जाती है। इनकी कहानियाँ जीवन के कटु यथार्थ एवं त्रासद स्थिति के बीच से नारी की अस्मिता, स्वावलंबन, स्वाभिमान को तीक्ष्णता से मुखरित करती हैं। "कोई कलाकार यथार्थ में ही बिना अयथार्थी पुनर्निर्माण के वरन अभिव्यक्ति कौशल से वही जादू पैदा कर दे तब वह कलाकार निश्चय ही श्रेष्ठ कलाकार है। चित्रा मुद्गल ऐसी ही श्रेष्ठ कथाकार हैं।"[1] यानी चित्रा मुद्गल का लेखन आज के महिला लेखन में विशिष्ट स्थान रखता है। आज के सामाजिक जीवन में नित्य नए बनते-बिगड़ते समीकरणों को जितनी सूक्ष्मता और बारीकी से उन्होंने उजागर किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी संपूर्ण कहानियाँ 'आदि-अनादि' नाम से 3 खंडों में प्रकाशित है।

---

1. साक्षात्कार मई 2004 (सं) - हरिभटनागर, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद का मासिक प्रकाशन, भोपाल। चित्रा मुद्गल के उपन्यास पर विश्वमोहन तिवारी - पृ. 114

चित्रा मुद्गल ने अपने उपन्यासों में भी निम्न मध्यवर्गीय व्यक्तियों, परिवारों की स्थितियों से गहराई से जुड़कर उसे उकेरने का प्रयास किया है। उनका उपन्यास 'एक ज़मीन अपनी' स्त्री पात्र के नज़रिये से विशेष महत्व रखता है। लेखिका ने अपने इस उपन्यास में एक ओर बाज़ारीकरण के इस दौर में विज्ञापन का स्थान और उसका छल-कपट आदि को बयान किया है दूसरी ओर स्त्री शरीर को विज्ञापनबाजी का उपकरण करने वालों को भी चित्रित किया है।

'आवां' उनका प्रसिद्ध उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने मज़दूरों की पीड़ाओं, यातनाओं को बयान किया है। इसके साथ ही स्त्रियों का शोषण एक मुख्य मुद्दा बनकर आया है। चित्रा मुद्गल की गिलिगडु उपन्यास बूढ़े लोगों की समस्याओं पर केन्द्रित है।

चित्रा मुद्गल का संबन्ध ज़्यादातर गरीबों और मज़दूरों के जीवन से जुड़ा रहा। 'जागरण' संस्था के सचिव के रूप में कार्य करते हुए अपने अनुभव क्षेत्र को उन्होंने विशाल बनाया। इन सब कारणों से इनका लेखन आज के महिला लेखन में विशिष्ट स्थान रखता है।

1.2.6 सूर्यबाला

सूर्यबाला अपने व्यंग्य की क्षमता के कारण प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाली लेखिका है। समाज, जीवन, परंपरा, आधुनिकता एवं उससे जुड़ी समस्याओं को लेखिका सूर्यबाला एक खुली एवं मुक्त दृष्टि से देखने की कोशिश करती हैं। 'एक

इन्द्रधनुष दिशाहीन', 'थाली भर चाँद, 'मुंडेर पर', 'गृह प्रवेश', 'सांझबाती', 'कत्यायनी संवाद', 'इक्कीस कहानियाँ', 'पाँच लम्बी कहानियाँ', 'सिस्टर प्लीज आप जाना नहीं', 'मनुष गंध' आदि इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं तो 'मेरे संधि-पत्र', 'सुबह के इंतजार तक', 'अग्निपंखी', 'यामिनी कथा', 'दीक्षांत' आदि इनके उपन्यास हैं।

सूर्यबाला का रचना संसार घर-परिवार तक सीमित नहीं है। पूर्ण और विस्तृत ज़िंदगी की लाचारी तथा द्वंद्वग्रस्तता की स्थिति को व्यापक परिप्रेक्ष्य में लेखिका ने प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'आदमकद' नामक अपनी कहानी में एक निम्न मध्यवर्गीय नारी के दर्द को अभिव्यक्ति दी है। मधुरेश के अनुसार "सूर्यबाला की कहानियाँ भले ही बहुत अधिक किस्म की स्त्री की उपस्थिति को अपना रचनात्मक सरोकार न मानती हो, या फिर व्यंग्य के लिए ही उनका उपयोग करती हो, लेकिन आत्मसजग और आत्मचेतस स्त्री के अनेक रूप उनकी कहानियों में मौजूद हैं।"[1] सूर्यबाला के अनुसार नारी जिस दिन परम्पराओं और रूढियों को तोड़कर जीवन के महत्व को समझेगी उस दिन सबकुछ बदल जाएगा और उसका संघर्ष सार्थक हो जायेगा। लेखिका सूर्यबाला के रचना लोक में विषय की बहुलता है।

सूर्यबाला एक सफल उपन्यासकार भी हैं। बिना किसी बनाव-श्रृंगार के नारी के अंतःमन व हृदयगत भावों को उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। उनका उपन्यास 'मेरे संधि पत्र' नारी जीवन की छटपटाहट को स्पष्ट करने वाला है। 'सुबह के इन्तज़ार तक' उपन्यास में एक ऐसी युवती की कहानी है, जो अपने

---

1. सूर्यबाला मनुष-गंध (भूमिका से) मधुरेश

अंतिम समय तक समाज से, संस्कारों से तथा अपने आप से संघर्ष करती है। सिद्धान्तों से अधिक व्यापारिकता पर ही अधिक बल देती हैं।

1.2.7 सुधा अरोड़ा

सुधा अरोड़ा ने नारी सुलभ दायरों से आगे बढ़कर व्यापक जीवन यथार्थ से जुड़ी अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। इनकी रचनाओं में आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक जागरण की अभिव्यक्ति हुई हैं। इन्होंने एक ओर अपनी कहानियों में घर-गृहस्थी की नयी स्थितियों को प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर वह घर से बाहर समाज के बृहत्तर जीवन यथार्थ के आधार पर भी अपनी रचना संसार निर्मित किया है। 'बगैर तराशे हुए', 'कमज़ोर', 'युद्ध विराम' आदि इनके कहानी संग्रह हैं। इनमें 'खलनायक', 'एक सेंटीमेंटल', 'डायरी की मौत', 'इस्पात', 'बगैर तराशे हुए', 'युद्ध विराम', 'तानाशाही' आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। जबकि 'पानी की ज़मीन' इनकी औपन्यासिक कृति है। अपनी कहानियों के ज़रिए सुधा अरोड़ा ने साहित्य के क्षेत्र में अपना नाम कमाया। और फिर उपन्यासों और स्त्री विमर्श के सन्दर्भ में लिखने लगीं।

अपने कहानी संग्रह 'बगैर तराशे हुए' में चित्रित कहानी 'आग' में लेखिका सुधा अरोड़ा ने एक ऐसी युक्ती की कहानी कही है जो किसी और के मँगेतर को चाहने लगती है। लेकिन कहानी के अंत तक आते आते वह अपने आप को काबू कर लेती है। नारी की इच्छाओं और अभिलाषाओं और विषमताओं को अपनी कहानियों के ज़रिए उन्होंने खुलकर बयान किया है।

सुधा अरोड़ा ने अपने उपन्यासों में घर और समाज की चौखट पर दिन रात संघर्षशील स्त्री के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है। अपने समय के निर्मम और बीहड़ प्रश्नों को चित्रित करने में भी लेखिका कामियाब रहीं। उनके मतानुसार समाज में जो स्थान पुरुष का है वही स्थान नारी को भी मिलना चाहिए। अपनी नारीवादी रचनाओं के माध्यम से लेखिका ने अपने स्त्री-संबन्धी विकल्प को प्रस्तुत किया है। वे लिखती हैं - "कई ऐसी औरतें भी होती हैं जो अपनी जिन्दगी के महत्वपूर्ण साल इस कोशिश में खपा देने के बाद भी अपने को असफल पाती हैं और देखती हैं कि उन्हें फिर भी दूसरा दर्जा दिया जाता है। इसके बाद शुरू होती है उसकी अपने अस्तित्व, अपनी पहचान, अपनी आकांक्षाओं की लड़ाई, जिसे हर लड़की अपने-अपने तरीके से लड़ती है और अपनी आज़ादी हासिल करती है।"[1] यहाँ नारी का कमज़ोर पक्ष व्यक्त होता है साथ ही साथ नारी का विद्रोही भाव भी। उनके अनुसार स्त्रियों को अपने हक की लड़ाई लड़नी चाहिए।

संक्षेप में कहा जाए तो सुधा अरोड़ा ने अपनी रचनाओं के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को वाणी देने में बहुत सफल निकली हैं। उनकी रचनाएँ पाठकों के मनोजगत में चुपके से प्रवेश कर उसे एक प्रश्नानुकूल बेचैती सौंपती है।

---

1. सुधा अरोड़ा - आम औरत जिंदा सवाल - पृ. 98

1.2.8 मृणाल पाण्डेय

मृणाल पाण्डेय समकालीन हिन्दी रचना क्षेत्र में आत्मसजग एवं बहुमुखी रचनाकार के रूप में जानी जाती है। उनका रचना कौशल काफी चुस्त और दुरुस्त है। मृणाल पाण्डेय ने सामाजिक जीवन के समस्त पहलुओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। साहित्य की सभी विधाओं में उन्होंने सफलतापूर्व कलम चलायी हैं। अपने इक्कीसवीं वर्ष की आयु में उन्होंने पहली कहानी 'कोहरा और मछलियाँ' लिखीं जो सन् 1967 में धर्मयुग हिन्दी साप्ताहिक में प्रकाशित हुई। उस समय से लेकर अब तक वे निरंतर लेखन कार्य से जुडी रहीं।

मृणाल पाण्डेय की कहानियों में आधुनिक वातावरण के प्रभाव के कारण उत्पन्न सम्बन्धों के ह्रास का मार्मिक वर्णन हुआ है। उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन की व्यापकता देखने को मिलती है। साथ ही साथ उच्च वर्ग की भावहीनता, अकेलापन, दहशत आदि भी। 'दरम्यान', 'शब्दबेधी', 'एक नीच ट्रेजेडी' (1981) 'एक स्त्री का विदागीत' (1985), 'यानी की एक बात थी' (1990), 'बचुली चौकीदारिन की कढ़ी' (1990), 'चार दिन की जवानी तेरी' (1995) आदि उनके प्रमुख कहानी संकलन हैं। 'शरण्य की ओर' कहानी में माँ और बेटी के बीच के टूटते रिश्ते की झलक मिलती है। कहानी में डॉली छुट्टियों में घर नहीं जाना चाहती है क्योंकि उसकी माँ अपनी जिम्मेदारियाँ उसके ऊपर डाल देती है। माँ हर बार उसे अपने लिए वर ढूँढ़लेने की सलाह देती है इससे बेटी माँ से दूर होती चली जाती है। डॉली कहती है - "फिर उनकी वही नसीहतें के तुम्हें जल्दी ही अपने लिए

कोई ढूँढ़ लेना चाहिए... बड़ी उम्र की शादी... जैसे कि मैं हाथ बढ़ाऊँगी, तो कोई लड़का मेरी हथेली पर टपक पड़ेगा।"[1] यहाँ पर माँ के प्रति एक बेटी का आक्रोश है।

'एक नीच ट्रेजेडी' उनका तीसरा कहानी संकलन है। मध्यवर्गीय जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि, अनुभव, संवेदना के सूक्ष्म स्पर्श, व्यक्ति चरित्र का तटस्थ विश्लेषण और टूटते मानव मूल्यों के प्रति गहन रचनात्मक चिन्ता आदि इस संग्रह की कहानियों की विशेषता है।

'एक स्त्री का विदागीत' उनका एक ओर कहानी संकलन है। पारिवारिक संबन्धों के चित्रण के साथ-साथ इसकी कहानियों में लेखिका ने पहाड़ी जीवन की विविध झाँकियों को भी प्रस्तुत किया है।

मृणाल पाण्डेय ने अपने उपन्यासों में आधुनिक परिवेश में अपनी अस्मिता को तलाशती नारी का चित्रण किया है। नारी जीवन में संघर्ष के बाद जो स्वतंत्रता आई है उसे एक नयेपन के साथ लेखिका ने प्रस्तुत किया है। उनके प्रमुख उपन्यास है 'विरुद्ध', 'पटरंगपुराण', 'रास्ते पर भटकाते हुए' आदि। 1997 में प्रकाशित 'विरुद्ध' नारी मन की कोमल भावनाओं को स्पष्ट करता है। यह उपन्यास एक उच्च शिक्षित तथा उच्च वर्गीय स्वाभिमानी नवयुवती की मानसिक घात-प्रतिघातों की अत्यन्त मार्मिक कथा है। मृणाल का दूसरा उपन्यास 'पटरंग पुराण' 1983 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास एक पहाड़ी कस्बे की गाथा है। पहाड़ी जीवन में

---

1. मृणाल पाण्डेय - दरम्यान - पृ. 42

ग्यारह पीढ़ियों में होनेवाले परिवर्तन का चित्रण इसमें है। मृणाल ने अपने इस उपन्यास को आधुनिक विडम्बना के साथ जोड़कर हमारी मौजूदा सामाजिक राजनीतिक और व्यक्तिगत त्रासदी को नया अर्थ प्रदान किया है। 'रास्ते पर भटकते हुए' मृणाल का तीसरा उपन्यास है। उनका यह उपन्यास 2000 में प्रकाशित हुआ। लेखिका ने इस उपन्यास में भटके हुए लोगों की गाथा कही हैं। यह उपन्यास आधुनिक समाज में व्याप्त, विसंगतियों का आईना है। उपन्यास में भ्रष्टाचार वेश्यावृत्ति, स्वार्थलोलुपता, अवसरवादिता और झूठ को मान्यता देते असमाजिक तत्व का उद्‌घाटन किया गया है।

1.2.9 मेहरुन्निसा परवेज़

समकालीन लेखिकाओं में मेहरुन्निसा परवेज़ एक ऐसी रचनाकार हैं जिसका अपना एक अलग दृष्टिकोण है। इस्लाम-संस्कृति के विभिन्न आयामों का सुन्दर चित्रण उनकी रचनाओं में मिलता है। भारतीय मुसलमानों की मनःस्थिति, रहन, सहन, खान-पान, आचार-विचार, धर्म-दर्शन आदि की स्वानुभूत अभिव्यक्ति के साथ उसके काले पक्षों को भी उजागर किया गया है। 'आदम और हव्वा', 'टहनियों पर धूप', 'गलत पुरुष', 'फालगुनी', 'अंतिम चढ़ाई', 'कोई नहीं', 'एक और सैलाब', 'अयोध्या से वापसी' आदि उनके श्रेष्ठ कहानी संग्रहों हैं। श्रीमती परवेज की कहानियों पर समीक्षा करते हुए डॉ. विवेकी राय लिखते हैं "श्रीमती मेहरुन्निसा परवेज़ ने घर-परिवार को देखा, उसमें पीड़ित लोगों को देखा और उसमें पीड़ित नारी को गहराई से देखा और सबको चित्रांकित किया।"[1] अपनी कहानियों में

---

1. प्रकार (सं) विवेकीराय - पृ. 19, वर्ष-7, अंक 6, अक्तूबर 1973

मेहरुन्निसा परवेज़ ने नारी जीवन की समस्याओं को प्रमुखता दी हैं। उन्होंने नारी के व्यक्तित्व के दोनों पक्षों का चित्रण किया है।

'त्यौहार' नामक कहानी में लेखिका ने निम्न मध्यवर्गीय जीवन के कटु यथार्थ को प्रस्तुत किया है। 'शनाख्त' एक ऐसी कहानी है जिसमें नारी के व्यक्तित्व के दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है। निम्न मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को वाणी देने में लेखिका बहुत सफल निकली हैं।

आम नारी-जीवन की त्रासदियों को सहज ही उपन्यास का रूप देने में कुशल रही मेहरुन्निसा परवेज़। 'आँखों की दहलीज़' (1969), उसका घर (1972), कोरजा (1977), अकेला पलाश (1981), समरंगण (2003) तथा 'पासंग' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। श्रीमती परवेज ने अपने व्यापक अनुभव को ही अपनी रचनाओं का आधार बनाया है। 'आँखों की दहलीज' उपन्यास में नारी मन की एक ऐसी समस्या को लिया है जो शाश्वत है। प्रस्तुत उपन्यास में जीवन के प्रति रूखापन, ऊब, कुंठा और आत्मग्लानी का चित्रण है। इस उपन्यास के बारे में लेखिका स्वयं लिखती हैं कि "'आँखों की दहलीज़' मेरा पहला उपन्यास है और यह मैंने तब लिखा था जब सारी दुनिया को मालूम था कि मेरे घर में कोई बच्चा नहीं और मैं किसी के दिये शाप का फल भोग रही हूँ। ऐसे वक्त में लिखा मेरा उपन्यास 'आँखों की दहलीज़' जिसमें एक मुस्लीम परिवार की कथा थी, धमाका थी, धमाका कैसा? जैसे पटाका ज़ोर से आवाज करता फूट जाये फिर वहीं शान्ति।"[1] उपन्यास

---

1. मेहरुन्निसा परवेज़ - आँखों की दहलीज (भूमिका से)

में लेखिका ने स्त्री और माँ जैसे नारी के दोनों रूपों में माँ को अधिक महत्व दिया है। लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में यह दिखाया कि नारी के सहज संतति-प्रेम का अतृप्त रह जाना उसके लिए बहुत बड़ा कलंक होता है।

'उसका घर' श्रीमती परवेज का दूसरा उपन्यास है। यह उपन्यास ऐल्मा नामक नायिका का आत्मकथ्य है। ऐल्मा एक ऐसी नारी है जो अपने घर की तलाश में भटकती है। वह उस घर की तलाश में रहती है जिसे वह अपना घर कह सके, लेकिन अन्त में ऐल्मा को अपना घर नहीं मिलता। इस उपन्यास में लेखिका ने सामाजिक परिवेश की टूटन-घुटन, निराशा और संत्रास को अभिव्यक्त किया है इसके साथ-साथ यौन शोषण और संयुक्त परिवार के विघटन का चित्रण भी इस उपन्यास में है।

1977 में प्रकाशित मेहरुन्निसा परवेज़ का 'कोरजा' उपन्यास निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज की नारी व्यथा को बयान करता है। 'अकेला पलाश' मेहरुन्निसा का चौथा उपन्यास है। बेमेल विवाह से उपजी नारी की वैदिक वासना की समस्या को लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से उजागर किया है। उनका 'समरंगण' उपन्यास 2002 में प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास नायक प्रधान है। उपन्यास में लेखिका ने गोपीलाल की कहानी कही है। सब कुछ होकर भी वह अकेला रह जाता है उसे लगता है कि यहीं समरंगण है। 2004 में प्रकाशित 'पासंग' उन्होंने नारी समस्याओं को चित्रित किया है। इस तरह मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपने कथा साहित्य में नारी जीवन की अनेक विसंगतियों, विद्रूपताओं का चित्रण किया है।

1.2.10 निरुपमा सेवती

समकालीन महिला रचनाकारों में निरुपमा सेवती अपनी भरपूर रचनात्मक क्षमता, हृदयग्राही कथ्य तथा सहज-सरल भाषा शैली के कारण विशिष्ट स्थान रखती है। 'खामोशी को पीते हुए', 'आतंक बीज', 'काले खरगोश', 'कच्चा मकान' और 'भीड़ में गुम' आदि इनके कहानी संग्रह हैं, जबकि 'पतझड की आवाजें', 'बँटता हुआ आदमी', 'मेरा नरक अपना है', 'दहकन के पास' आदि इनके उपन्यास हैं। इनकी रचनाओं में प्रेम, विवाह, सेक्स के त्रिकोण से निर्मित होती नारी के बदलते संबन्धों-संदर्भों का रेखांकन है। "निरुपमा जी ने व्यक्ति जीवन के लगभग सभी प्रसंग, सामाजिक विसंगतियों, संकीर्ण मनोवृत्तियों की ओर परा आधुनिकता के व्यामोह की पृष्ठभूमि में रेखांकित किए हैं।"[1] निरुपमा सेवती ने अपनी कहानियों में ज़्यादातर नौकरी-पेशा अविवाहित लड़कियों की समस्याओं और उनकी स्वतंत्रता की कामना का वर्णन किया है। 'सबमें से एक' कहानी की 'मैं' पिता द्वारा तय किए गए विवाह को ठुकरा देती है। पिता नाराज़ होकर उसका खर्चा, भेजना बन्द कर देता है तो वह नौकरी करके खुद जीने लगती है। 'बद्धमुष्टि' कहानी की शुभा गरीबी और मजबूरी के कारण सब सहन करती है।

पारिवारिक विसंगतियों से उत्पन्न अकुलाहट, अकेलापन और भौतिक सुखों की टकराहट को निरुपमा ने अपनी कहानियों के ज़रिए बयान किया है। 'झूठ का सच' कहानी का पति अपनी पत्नी के बहुत सुन्दर होने के साथ-साथ बुद्धिमान

---

1. डॉ. सुखवीर सिंह - हिन्दी कहानी समकालीन परिदृश्य - पृ. 121

होने की बात सहन नहीं कर पाता। इससे स्पष्ट होता है कि निरुपमा सेवती जी कि कहानियाँ घर-परिवार की सीमित दायरे में रहते हुए भी सूक्ष्म एवं गहरी पकड़ के कारण महत्वपूर्ण हैं।

निरुपमा सेवती मानवीय संबन्धों पर अपनी पकड़ रखती हैं। जीवन के उलझनों, जटिलताओं, संघर्षों को उन्होंने अपने उपन्यासों का विषय बनाया। 'पतझड़ की आवाजें' में निरुपमा जी ने ऐसी नारियों के जीवन संघर्ष का चित्रण किया है, जिन्हें एक ओर परिवार की आर्थिक दुर्दशा से जूझना पड़ रहा है, दूसरी ओर अपनी आंतरिक इच्छाओं, आकांक्षाओं से है।

'बँटता हुआ आदमी' उपन्यास में लेखिका ने फिल्मी संसार के जीवन के उलझनों, जटिलताओं की पृष्ठभूमि आधार बनाकर लिखा है। अपने इस उपन्यास में लेखिका नर-नारी के सम्बन्धों से होती हुई अन्तर्द्वन्द्व का बदलता स्वरूप प्रस्तुत करती है। 'दहकन के पार' में हिन्दू लड़की और मुसलमान लड़के के बीच प्रेम का चित्रण करते हुए लेखिका ने धार्मिक, सांप्रदायिक रूढ़ियों पर प्रहर किया है, और भविष्य के प्रति आशावादी स्वर मुखरित किया है।

निरुपमा सेवती की संपूर्ण रचनाओं पर विचार करने के पश्चात् इस तथ्य से मूँह नहीं मोड़ा जा सकता है कि उन्होंने अपनी रचनाओं का निर्वाह बड़ी कुशलतापूर्वक किया है। इनकी लेखन यात्रा की अपनी शक्ति और सीमाएँ हैं जो पाठकों को सोचने के लिए मजबूर कर देती हैं।

1.2.11 नासिरा शर्मा

स्त्री लेखन को एक नया मोड़ देनेवाली लेखिकाओं में नासिरा शर्मा का नाम शामिल है। उन्होंने स्त्री अधिकार और मुक्ति के प्रसंग को बड़ी शिद्दत से अभिव्यक्ति दी। नासिरा शर्मा ने अपनी रचनाओं के द्वारा मानव जीवन में व्याप्त अकेलापन, घृटन, इनसान के दिल और दिमाग की टकराहट आदि को अभिव्यक्ति दी है। इनसान को इनसान की तरह जीने में बाधा उपस्थित करनेवाले तथ्यों को लेखिका ने अपनी कहानियों में उभारा है "नासिरा की कहानियों में भरपूर अवामी कल्चर है जो कहानी के कहानीपन में सजावट तो पैदा करता ही है साथ ही कहानी के केन्द्र को भी उजागर करता है। इस कल्चर की विशेषता यह है कि यह मध्यवर्गीय मुसलमानी कल्चर से फूटता है जिससे आमतौर पर हिन्दी कहानी महरूम रहती है।"[1] नासिरा शर्मा की कहानियों का दायरा बहुत विस्तृत है।

'इन्सानी नस्ल' नामक कहानी संग्रह में लेखिका ने जीवन की सादगी में पनपते रिश्तों को चित्रित किया है तो 'असली बात' नामक कहानी में उन्होंने इनसान को एक दूसरे से अलग करनेवाली सांप्रदायिकता के दुष्परिणामों की ओर इशारा किया है। 'अपराधी' कहानी में एक ऐसे भौजी का चित्रण किया है जो इस दुनिया के भ्रष्टाचारों से अनभिज्ञ है। 'अबें-तौबा' मनोवैज्ञानिक धरातल पर लिखी गयी नासिरा शर्मा की एक और कहानी है। नासिरा शर्मा का 1986 में प्रकाशित

---

1. वाइमय - त्रैमासिक जून 2009 (सं) डॉ. एस. पीरोज़ अहमद (नासिरा शर्मा विशेषांक) - पृ. 148

कहानी संग्रह है 'पत्थर गली'। जीवन से गहन जुड़ाव तथा सामाजिक उथल पुथल का कलात्मक चित्रण प्रस्तुत करने में लेखिका इस कहानी संग्रह के ज़रिए कामियाब हुई हैं। 1993 में प्रकाशित नासिरा शर्मा का कहानी संग्रह है 'संगासार'। उन्होंने अपनी रचनाओं के ज़रिए मुस्लीम समाज में फैले अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और अनाचारों को खुलकर बयान किया है। उनकी 'खुदा की वापसी' संग्रह की कहानियाँ मुस्लीम समुदाय विशेष की होकर भी स्त्री मात्र से जुड़े शाश्वत प्रश्नों से जूझती है।

नासिरा शर्मा का बहुचर्चित उपन्यास है 'जिन्दा मुहावरा'। यह भारत पाकिस्तान विभाजन को परिप्रेक्ष्य में रखकर लिखा गया उपन्यास है। अपने इस उपन्यास के सम्बन्ध में नासिरा शर्मा स्वयं लिखती हैं कि - "मेरी कोशिश इस उपन्यास के ज़रिए सिर्फ इतनी है कि मैं 'जिन्दा मुहावरे' के पाठकों को उस सेतू पर लाकर खड़ा कर सकूँ जो एक इन्सान से दूसरे इन्सान तक जाता है और जिसके नीचे मोहब्बत का समन्दर ठाठें मारता है।"[1] इस उपन्यास का वस्तु पक्ष विभाजन से पीड़ित व्यक्तियों पर केन्द्रित है।

'शाल्मली' उपन्यास में हिन्दू स्त्री की दाम्पत्य स्थिति का चित्रण है और यह दर्शाया गया है कि पति के रूप में हर पुरुष अपनी औरत को गुलाम समझता है। उपन्यास में नासिरा शर्मा ने बराबर इंसानी समझदारी पर ज़ोर दिया है। उन्होंने स्त्री-पुरुष दोनों की चेतना के उन्नयन की बात की।

---

1. नासिरा शर्मा - जिन्दा मुहावरे - पृ. 8 (भूमिका से)

'ठीकरे की मँगनी' में अंधविश्वास से बंधी तथा पुरुष वर्चस्व से पिसती नारी के जख्म स्वाभिमान को जगाया है, जहाँ तक स्त्री अपनी ज़िन्दगी को अपने ढंग से देखकर उसको एक पहचान और अर्थ देती हुई जान समुदाय की आवाज़ बुलन्द करती है। जल की ज्वलंत समस्या को लेकर अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने वाली लेखिका का उपन्यास है 'कुइयाँजन'। इस उपन्यास में लेखिका ने जीवन के परम स्त्रोत जल की गाथा को बड़े ही सशक्त ढंग से पेश किया है। 'बहिश्ते जहरा' सन् 2009 में ईरानी क्रान्ति पर लिखा गया उपन्यास है।

नासिरा शर्मा की रचनाओं से गुज़रते हुए पाठक निरन्तर इस एहसास से आगे बढ़ता है कि धर्म व परंपराओं का उपयोग किस प्रकार मुस्लीम पुरुष समाज हमेशा अपनी मनमानी करने के लिए करता आया है।

1.2.12 गीतांजलि श्री

गीतांजलि श्री उन महिला रचनाकारों में हैं जिन्होंने विविध क्षेत्रों पर विषय वस्तु का चुनाव करते हुए यथार्थ के धरातल पर वैचारिक दृष्टि, कलात्मकता, कथावस्तु और शिल्प की एकता के सामंजस्य को बनाए रखा। उनकी रचनाओं का मूल तर्क वह हिंसा है जो हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी का हिस्सा बन गई है। उनकी कहानियों में न केवल मानवीय जिजीविषा, संघर्ष और संवेदना के विविध रूपों को देखा जा सकता है बल्कि जीवन की गति को उनकी तमाम विषमताओं एवं विसंगतियों के परिप्रेक्ष्य में महसूस भी किया जा सकता है। 'अनुगूँज', वैराग्य आदि इनके कहानी संग्रह है जबकि 'माई', 'हमारा शहर उस बरस', 'तिरोहित' आदि

उनके उपन्यास हैं। गीतांजलि श्री ने स्त्रियों के घरेलू जीवन की अनुभूतियों, रोजमर्रा के स्वाद, महक को बडी सूक्ष्म ढंग से उकेरा है।

'माई' में लेखिका ने स्मृति के सहारे माई को केन्द्र में रखकर अपने परिवार की अंतरंग कथा कही हैं। यह एक सम्पन्न परिवार की तीन पीढ़ियों की कहानी है। पहली पीढ़ी ड्योढ़ी की सीमाओं में कैद अपने में संतुष्ट है। दूसरी पीढ़ी ऊपर से शांत, शीतल किन्तु भीतर से सुलग रही है। तीसरी बाहर निकलकर भी घुटनभरी निजता में कैद है। गीतांजलि श्री के 'हमारा शहर उस बरस' उपन्यास की कथा भूमि अत्यधिक विस्तृत है। शहर में एक मठ है। यह मठ एक प्रतीक है साम्प्रदायिक शक्ति केन्द्र का। इस उपन्यास में न कहीं जनतंत्र है, न मानवीय मूल्य ऐलानों, बहसों, संवादों, नारों और प्रतीकों के सम्मिलित उपयोग से कथासूत्रों की सघन संरचना करता हुआ यह उपन्यास नैरेशन की सामान्य धारा से अपने को अलग करता है।

'तिरोहित' गीतांजलि श्री का, नये किस्म का उपन्यास है। एक कस्बे में एक छत के नीचे दो युवा स्त्रियाँ रहती हैं। दोनों के बीच तटस्थ अनुराग है। यह अनुराग काम प्रेरित है। वे मन और शरीर की माँग को स्थगित नहीं करतीं। सीमायें लाँघती हैं और एक दूसरे में समा जाती हैं - "तिरोहित में लालना और चर्चा की युगलबन्दी से गीतांजलि श्री जिस स्त्री राग की रचना कहती हैं वह नारी-विमर्श का नया आयाम है। स्त्री-संसार उजानी पर्तों को खोलने के लिए गीतांजलि स्त्री या मर्द मुहावरा न अपनाकर जो वयस्क मुहावरा अपनाती हैं, वह कई स्त्री लेखिकाओं की

आक्रामक मुद्रा को गैर जरूरी सिद्ध कर देता है।"[1] हिन्दी में स्त्री समलैंगिकता को अकुण्ठ भाव से लेखिका ने उपन्यास में चित्रित किया है।

गीतांजलि श्री ने अपनी रचनाओं में आधुनिक जीवन के अलग-अलग आयामों के भीतर से कथ्य और अन्तर्वस्तु का चयन किया है। उनकी रचनाभूमि बदलती रही है और उसी के अनुसार भाषा और शिल्प में भी परिवर्तन होता रहा है। इस दृष्टि से हिन्दी महिला लेखिकाओं में गीतांजलि श्री का स्थान विरल और विशिष्ट है।

अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी समकालीन महिला कथा लेखन के प्रमुख हस्ताक्षर है। इनके साथ अन्य लेखिकाओं को भी जोड़ सकते हैं, जैसे मीरा कांत, कविता आदि। अगले अध्यायों में इनका विशद अध्ययन है, इसलिए यहाँ अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी को दुहराना नहीं चाहती हूँ।

❖❖❖

1. वीरेन्द्र यादव - उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता - पृ. 185

दूसरा अध्याय

अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में पितृसत्तात्मक समाज

दूसरा अध्याय
अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में पितृसत्तात्मक समाज

पुरुषवर्चस्व प्रधान समाज में महिलाओं की समस्याएँ बेशुमार हैं। स्त्री के लिए पुरुष सत्तात्मक समाज ने जो प्रतिमान बनाये, कालांतर में स्त्री का स्वभाव उन्हीं के अनुरूप ढलता गया। इससे स्त्रियों का खास नुकसान हुआ और स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को बड़ी चालाकी से नकारा गया। पुरुष और स्त्री में जो प्रकृतिजन्य जैविक अंतर है उसी का लाभ उठा कर सदियों से पुरुष ने उसे कमज़ोर और आश्रित घोषित कर उसके सहज स्वाभाविक व्यक्तित्व को उभरते नहीं दिया। पुरुष, पुरुष के लाभ के लिए, उसके स्वयं के स्वार्थ हेतु ही सामाजिक नियम गढ़ता रहा, सिवा सच्चे मानवतावादी दृष्टिकोण के।

हर युग में नारी विवश रही है। यह विवशता सामाजिक बन्धनों की है। उससे उभरने की इच्छा के बावजूद स्त्री की विवशता यही है कि वह तड़पती दबती रहने को मजबूर होती है। सहनशीलता नारी का सकारात्मक पक्ष है पुरुष उसका नाजायस फायदा ही उठाता रहता है। स्त्री का अकेला होना सामाजिक रूढ़ियों की क्षमता से सम्बन्धित है। परिवार और समाज में आखिर कोई अकेली हो जाती है तो वह स्त्री है। पारिवारिक जीवन में आज भी वह पुरुष के अधीन होकर जीने के बाध्य हो गयी है। यानी स्त्री स्वातंत्र्य हमेशा दायरों में सीमित रहा। दरअसल स्त्री

स्वातंत्र्य का प्रतिबन्ध हमारी पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था, पितृसत्तात्मक समाज और सामंती संस्कृति ही रहा है। बलात्कार, पति द्वारा मार-पीट, तलाक, वेश्यावृत्ति, दहेज देने की प्रथा, दहेज हत्या आदि इसी आर्थिक व्यवस्था का ही परिणाम है। इस प्रकार पितृसत्तात्मक समाज द्वारा नारी को किसी न किसी प्रकार के शोषण का शिकार होना पड़ता है।

2.1 समाज और पुरुष की प्रभुता

हम एक ऐसे समाज में जी रहे हैं जो पूँजीवादी ही नहीं, पुरुष वर्चस्ववादी भी है। पुरुषाधिष्ठित मूल्यों से बने इस समाज में पुरुष की प्रबुद्ध दृष्टि ही कायम रही चाहे वह सामाजिक या राजनीतिक क्षेत्र में हो या फिर अपने ही परिवार में। इस सन्दर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं "पितृसत्ता एक सामाजिक घटना है, हज़ारों साल से चली आई ऐसी व्यवस्था, जिसमें स्त्री की अधीनस्थता सर्वविदित है। पितृसत्ता ने स्त्री को अपने ज्ञान की वस्तु बनाया। उसे साधन के रूप में प्रयुक्त किया उसके नाम, रूप, जाति, गोत्र सब अपने संदर्भ में परिभाषित किये। स्त्री का यह अमानवीकरण दलित के अमानवीकरण से कहीं ज्यादा सूक्ष्म है, क्योंकि दलित पुरुष भी तो पितृ-व्यवस्था सत्ता का सदस्य है और पुरुषोचित अहंकार के कारण स्त्री के शोषण और उत्पीड़न से वह भी बाज नहीं आता। दलित पुरुष अपने दमन से परिचित है। मगर स्त्री चाहे वह किसी भी जाति या वर्ण की हो, अपने उत्पीडन से परिचित ही नहीं है।"[1] कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को चुप-चाप सहती आ गई तो समाज में पुरुष की प्रभुता और भी प्रबल हो गयी।

---

1. प्रभा खेतान - उपनिवेश में स्त्री : मुक्ति-कामना की दस वार्ताएँ - पृ. 39

पुरुष ने निजी तथा व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए नारी को सदैव अपनी दासता का शिकार बनाया है। पुरुष ने उसे अपना जैसा मानव नहीं माना और भेदभावपूर्ण व्यवहार से अपने से अलग समझा। स्त्री उसके लिए संतान उत्पन्न करने का साधनमात्र है और उससे आगे का दर्जा नहीं दिया गया। युगों तक वह पुरुष की इस प्रवृत्ति से त्रस्त रही। अधिकाधिक पुत्रों को जन्म देकर वह पुरुष की संख्या में वृद्धि तो करती रही परन्तु उसे कितनी मानसिक यंत्रणाओं से गुजरना पड़ा, कितना उसकी शारीरिक शक्ति का ह्रास हुआ उसका पुरुष ने कभी आकलन नहीं किया। वह अबला कहीं जाती रही, चारों ओर से निरंतर यह सुनकर वह अपने को दूसरा समझने लगी। बाद में जब उसे होश आया तब तक पुरुष का कब्जा बहुत सशक्त हो गया था।

पुरुषाधिष्ठित मूल्यों से बने इस समाज में पहले से स्त्री को उसके शरीर मात्र में सीमित रख कर देखने की प्रवृत्ति रही है। औरत को मात्र देह मानना, समझना और स्वयं उसे भी यही समझाना बिल्कुल भी उचित नहीं। यह सच्च ही है कि स्त्री का शरीर ही उसकी सबसे बड़ी बाधा है। वह जहाँ भी जाती है, अपने शरीर की चिन्ता उसे पीछे की ओर खींचती है। प्राचीन काल से ही नारी देह का शोषण होता आ रहा है। बलात्कार, पति द्वारा पत्नी की मार-पीट आदि इसमें मुख्य हैं। सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद भी स्त्री को उसके शरीर के रूप में देखना बिल्कुल गलत बात है। उसे उसके शरीर मात्र के आधार पर न देखते हुए उसके मान, बुद्धि और आत्मा के ज़रिए पहचानना चाहिए।

पुरुष प्रधान समाज में नारी द्वारा अथक श्रम किये जाने पर भी पुरुष नारी को नगण्य मानता है। वह सवेरे उठती है और घर की सफाई में लग जाती है। अपने पति, बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों के लिए भोजन बनाती है। उन्हें प्यार से खिलाती है। यदि वह स्वयं कहीं नौकरी करने चली जाती है तो घर का सारा काम निपटाकर ही जाती है। अपने कार्य स्थल में वह पुरुष के समान कार्य करती है। जब वह घर लौटती है तो परिवार के सदस्य उससे अपेक्षा रखते हैं कि वह फिर उन्हें वे सब वस्तुएँ उपलब्ध कराये, जो वे चाहते हैं। उसका पति भी चाहता है कि वह उसे चाय, कॉफी आदि स्वयं लाकर दे। जबकि यथार्थ यह है कि कार्यस्थल पर काम करने से पुरुष थक जाता है तो नारी भी थक जाती है लेकिन पुरुष पत्नी अर्थात् नारी की थकावट को थकावट नहीं मानता। यदि थकावट के कारण नारी कोई मांगी गई वस्तु उपलब्ध न करा पाये तो वह पुरुष के कोप का भाजन बन जाती है। फलतः पुरुष का सहयोग मिले अथवा न मिले, नारी घर के सभी कार्यों को अपना कर्तव्य समझकर करती है जबकि पुरुष अपने द्वारा चुने कार्यों को भी नारी से ही करा लेने की कोशिश करता है। इस सन्दर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं कि - "हमारे देश में औरत यदि पढ़ी लिखी है और काम करती है, तो उससे समाज और परिवार की उम्मीदें अधिक हैं। लोग चाहते हैं कि वह सारी भूमिकाओं को बिना किसी शिकायत के निभाए। वह कमा कर भी लाए और घर में अकेले खाना भी बनाए, बूढ़े सास-ससुर की सेवा भी करें और अपने बच्चों का पालन पोषण भी। पड़ोसन फूहड़ है तो उससे फूहड़ विषयों पर ही बातें करें, वह पति के ड्राइंग रूम की शोभा भी बने और पलंग की मखमली बिछवान भी।

चूँकि वह पढ़ी-लिखी है, इसलिए तेज-तर्रार समझी जाती है, सीधी तो मानी ही नहीं जा सकती। स्पष्टवादिता उसका गुनाह माना जाता है।"[1] यानी आज जब नारी घर के बाहर कदम रख रही है तो अधिकांश बाहर के कार्य भी स्वयं करते देखी जा सकती है।

नारी द्वारा प्रस्तुत किये गये उत्तम विचारों को भी पुरुष अक्सर मान्यता नहीं देता है। भले ही वह उस सुझाव को बाद में क्रियान्वित कर दे मगर अपने ही तरीके से करता है। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो नारी द्वारा किये गये काम पुरुष से अधिक ही है। किसी भी तरह पुरुष को तो आराम मिल जाता है लेकिन नारी को नहीं। यदि उसे आराम मिलता है तो वह भी मनोरंजन के क्षण, विवाह अथवा पर्व-त्योहार सम्बन्धी अवसरों पर ही। वह भी आधी-अधूरी। नारी का पुरुष एवं संपूर्ण परिवार के प्रति समर्पण उसे चैन की नींद भी नहीं सोने देता।

2.1.1 धर्म के क्षेत्र में नारी का शोषण

यह विचित्र बात है कि नारी को धर्म, समाज व सत्ता किसी ने नहीं बख्शा। धार्मिक दासता के युग में तो भारत का साधारण जन समाज, जिनमें खास कर नारी अंधविश्वासों और अनाचारों के बीच फंसी जी रही थी। उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे भाग में आनेवाले नवोत्थान ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठायी तथा धार्मिक ढोंग और आडम्बरों के खिलाफ अक्रोश किया, जैसे राजाराम मोहन रॉय का ब्रह्मसमाज,

---

1. प्रभा खेतान - स्त्री उपेक्षिता - पृ. 15

दयानन्द सरस्वती का आर्यसमाज और विवेकानन्द का रामकृष्ण मिशन आदि। इन सबों ने हिंदू समाज में प्रचलित अन्धविश्वासों और रूढ़ियों को दूर करने के लिए कठिन परिश्रम किया। बालविवाह का विरोध और विधवा विवाह का समर्थन करके स्त्रियों पर उपकार किया।

धार्मिक कर्मकाण्डों ने भी महिलाओं को एक तरह से गुलाम ही बनाया है। स्त्री का जितना शोषण धर्म के नाम पर हुआ, उतना किसी और चीज के नाम पर नहीं। जिस धर्म ने मानव को पाप-पुण्य का मार्ग दिखाया था, वही धर्म नारी के मार्ग का काँटा बना। नारी के रूप में देवियों की पूजा करने के बावजूद भी शताब्दियों तक भारत में स्त्री को न केवल भोग्य माना जाता रहा बल्कि उसे ज्ञानार्जन अधिकार तक नहीं दिया जाता था। उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखा गया। "धार्मिक सम्प्रदायों में तब से लेकर आज तक स्त्रियाँ ही अधिक दिखाई पड़ती हैं। गीता का पाठ हो या रामकथा हो ध्यान से सुनने वाली महिलाएँ ही होती हैं। जबकि धार्मिक ग्रन्थों की स्त्री की स्थिति से आज की स्त्री सन्तुष्ट नहीं है। फिर क्या कारण है कि वह तल्लीन होकर सीता का त्याग सुनकर अश्रु बहाती है। स्त्री को लगता है कि धर्म ही उसे इस समाज में उच्च स्थान दिला सकता है। आज विवाह देर से होने के कारण दहेज समस्या तथा वैवाहिक दुःखद जीवन और विधवा बनकर जीने की पीड़ा से क्रान्त महिलाएँ ईश्वर की शरण ले रही हैं।"[1] धर्म के प्रति स्त्री अगाध श्रद्धा एवं विश्वास रखती है। नारी धर्म का अवलंब पाकर सफलता से अपना जीवन

---

1. डॉ. उषा कीर्ति राणावत - स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों का विमर्श - पृ. 15

व्यतीत कर देती है क्योंकि धार्मिक भावना का मूलाधार विश्वास है जो पुरुष की अपेक्षा नारी में अधिक पाया जाता है, यह धार्मिक ग्रंथों का सकारात्मक पहलू है।

सभी धार्मिक आचार एवं अनुष्ठान की नज़र स्त्री के प्रति टेढ़ी रही। धर्माचार नारी को गुलाम बनाता रहा और पुरुष को ईश्वर 'पति परमेश्वर'। नारी को बचपन से ही ऐसे संस्कार दिये जाते हैं कि विवाहोपरान्त वह अपने पति को खुश रखे। पति के चौखट पर पहुँचने के बाद उसकी अर्थी ही वहाँ से उठे। भारत में 'करवा चौथ' का व्रत पत्नी रखती है। पति की लम्बी उम्र तथा अच्छे स्वास्थ्य की कामना करते हुए वह पूरा दिन भूखी-प्यासी रहती है। लेकिन पुरुष कभी भी ऐसा अनुष्ठान नहीं करता है। पति के लिए कोई धर्म, नियम नहीं है। पुरुष ही धर्म की परिभाषा देता है, उसका संशोधन करता है। असल में अपने आग्रहों के अनुसार वह धर्म की व्याख्या एवं विश्लेषण करता है। वह स्त्री के लिए बन्धनों की दुनिया की सृष्टि करता है। पर्दा प्रथा, सती, तलाक इत्यादि बातों पर नज़र डाले तो उपयुक्त बातें साफ एवं सच मालूम हो जाएँगी।

अलका सरावगी ने अपने लेखन के ज़रिए पुरुष की प्रभुता पर खुलकर सवाल किये हैं। उनकी कहानियाँ पाठकों के दिल और दिमाग को छू जाती है। अपने प्रथम कहानी संग्रह 'कहानी की तलाश में' की 'एक व्रत की कथा' कहानी में अलका सरावगी ने उन धर्म साधनाओं, व्रत उपवासों का विरोध किया है जो शरीर को कष्ट पहुँचाते हैं। वे नारी को इन उपवासों से दूर रहने का आग्रह करती हैं। पूजा-पाठ, संकल्प, उपवास, त्याग-तपस्या इन समस्त साधनाओं का उद्देश्य मन

को शुद्ध, शांत, एकाग्र एवं संतुलित रखना है। पति के प्रति पत्नी की निष्ठा जताने के लिए पत्नी को उपवास से शरीर को सुखाने की प्रथा का निषेध अलका सरावगी ने अपनी इस कहानी के ज़रिए किया है।

कहानी की शुरुआत में कथा नायिका से बछवारस का व्रत रखने के लिए उसकी सास कहती है। अक्सर व्रत का दिन वह भूल जाती थी और भूल से वह कुछ खा जाती थी। ऐसी भूल से पति एवं बच्चों पर कष्ट होने की संभावना बताकर सास डराती थी। उसे आचारानुष्ठानों के पालन के लिए मजबूर करती। उसकी सास कहती है - "भाई, हम तो सारी जिन्दगी करते आए हैं। अट्ठाइस साल सास के पास रहे। जैसा उन्होंने किया, वैसा हमने किया।"[1] वैसे तो वह जानती थी ये सारे व्रत-त्यौहार औरतों को व्यस्त रखने और उन पर रोक-टोक लगाने के लिए ही हैं। औरतों पर नियंत्रण रखने का आसान रास्ता 'धर्म' का होता है। अपने घर में उत्पन्न तनाव और संघर्ष से मुक्ति पाने के लिए वह भगवान की शरण में आ जाती है। नायिका नीचे आकर अपनी सास और देवरानी के साथ उसका मन न होते हुए भी पूजा-पाठ करने के लिए तैयार हो जाती है।

परिवार के ढाँचे पर अभी भी रूढ़िवादी धारणाओं का गहरा प्रभाव है। औरत का कर्तव्य होता है कि वह अपने पति के खाना खाने के बाद ही खाये। उसके झूठे पत्ते में खाना डाल कर खाये, उसका इन्तज़ार करें। घर में अपनी माँ की स्थिति लड़की के लिए आदर्श बन जाती है। नारी की इस असंतुलित स्थिति पर

---

1. अलका सरावगी - कहानी की तलाश में - पृ. 50

विचार करते हुए अलका सरावगी कहती हैं कि नारी के अपमान में धर्म नहीं हो सकता है। धर्म सब को मुक्त करता है, बाँधता नहीं।

धर्मों का मूलाधार सत्य है और सभी का प्रधान लक्ष्य ईश्वर की सम्प्राप्ति है। हिन्दू, मुस्लीम, ईसाई धर्म की साधना पद्धतियाँ और पूजा-विधियाँ भिन्न-भिन्न होते हुए भी इन सब का लक्ष्य तो एक ही ईश्वर है। कोई भी धर्म स्त्रियों पर अत्याचार करने की अनुमति नहीं देता है। लेकिन पितृसत्तात्मक समाज ने धर्म की आड़ में समाज के स्वरूप कहीं बदल दिया। इस कारण से स्त्रियाँ आज भी धर्म की रूढ़ियों और पतनशील सामाजिक परम्पराओं और पुरुष के पाखण्डों की ताकत पर षड्यंत्र का शिकार होती जा रही हैं। वैराग्य प्रधान साधनाओं में पहले से ही नारी को बाधक मानकर उसके प्रति कठोर दृष्टिकोण अपनाया गया। उसे देवदासी मानकर धर्म के क्षेत्र में उसका शारीरिक शोषण किया जाने लगा।

2.1.2 नारी शोषण : परंपरा एवं संस्कृति का ह्रास

पुराने ज़माने से लेकर नारी शोषण का शिकार बनती आ रही है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को एक सीमित दायरे में रहना पड़ रहा है। आज भी स्त्री-पुरुष की दृष्टि में जैविक ज़रूरतों की पूर्ति का सामान सबसे पहले है बाद में बाकी सब रूप आते हैं। आज भी हम देख सकते हैं कि पाँच साल की बच्ची हो या सत्तर साल की बूढ़ी वह शोषण का शिकार होती है। कुछ साल पहले दिल्ली में एक लड़की के साथ किये गये अमानवीय अत्याचार इसका उत्तम उदाहरण है। इसके अलावा और कई घटनाएँ अब भी घट रही है। नारी का शोषण केवल शारीरिक

रूप से ही नहीं बल्कि मानसिक रूप में भी होता रहा है। स्त्री के शोषण करने में सत्ता और साधन संपन्न पुरुष आगे हैं।

परंपरा स्त्री को सुरक्षा के पर्दों में रखती है। जर्जर परंपराओं और शोषण के शिकंजे में कसी हुई स्त्री परंपरागत यातना और नई परिकल्पना के धुंधले में संघर्ष करती हुई आज अपने नए स्वरूप को गढ़ने की कोशिश कर रही हैं; मगर इस कोशिश में वह जीवन की अनेक जटिलताओं, विसंगतियों और अंतर्विरोधों से भी टकरा रही है। "बाहरी आधुनिकता हमारे भीतर की संकीर्णता और पुरातनता को नहीं चीर पाती और इस अन्याय और शोषण को रीति-रिवाज़ तथा परंपरा समझकर उसे जारी रखते हैं। इन सब शोषणकारी मान्यताओं व रिवाज़ों को उखाड़कर उनके स्थान पर समतावादी मान्यताएँ अपनाए बिना नारी समानता की मंजिल तक पहुँचना संभव नहीं है।"[1] यानी भारतीय समाज पर हावी सामन्ती एवं पूँजीवादी शोषणकारी परंपराओं को दूर करना चाहिए। हर तरह के कानून एवं मानवाधिकारों के बावजूद भी ये शोषणकारी स्त्री को आज़ाद होने नहीं देते हैं। क्योंकि स्त्री का आज़ाद होने का मतलब है पुरुष की सुख-सुविधाओं को त्यागना।

हमारी संस्कृति स्त्री को देवता के रूप में मानती है, ऐसा वाद करती है, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' वाली बातें प्रचलित है। व्यावहारिक जीवन में इसका नामोनिशान तक नहीं दिखाई देता है। आज लोग केवल एक वस्तु के रूप

---

1. सुभाष सेतिया - स्त्री अस्मिता के प्रश्न - पृ. 21

में स्त्री को देखते हैं। यहाँ समाज की दृष्टि उपयोग की, उपभोग की, व्यापारी दृष्टि है। व्यापार में मुनाफा एकमात्र लक्ष्य है। क्रयविक्रय में लाभदायक, सबसे उपलब्ध चीज़ स्त्री है। लोग उसकी भावुकता की नाजायज़ फायदा उठाते हैं। परंपरा से यह प्रक्रिया चलती आ रही है। आज तो उसका रूप बदल गया है, रंग बदल गया है। पुराने ज़माने में ऋषियों की तपस्या को भंग करने के लिए उन्हें मोहित करने के लिए अप्सराओं का उपयोग किया जाता था। कार्यसिद्धी के लिए स्त्री को इस्तेमाल करने की परंपरा आज भी चल रही है।

अलका सरावगी के उपन्यास 'कलि-कथा वाया बाइपास' में किशोरबाबू की भाभी विधवा है, जिसके कारण वह रोज़ सफेद साड़ी पहनती थी। एक बार किशोरबाबू के घर पढ़े-लिखे खुले विचारों वाले लोग आते हैं। तब भाभी रंगीन साड़ी पहनती है। वैसे भी बिना किनारी की सफेद साड़ियाँ पहनते-पहनते वह ऊब भी गयी थी। अपनी भाभी को रंगीन साड़ी में देख कर उसका चेहरा पहले काला हुआ और फिर लाल - "तुम्हारा दिमाग क्या अब एकदम ही खराब हो गया है भाभी? उम्र बढ़ने के साथ-साथ आदमी की अक्ल बढ़ती है, पर मुझे लगता है यु.पी (उत्तर प्रदेश) वालों की अक्ल कम होने लगती है। यह क्या इतने चटक-मटक रंग की साड़ी पहनी है। क्या कहेंगे लोग देखकर। कुछ तो मर्यादा रखी होती समाज में।"[1] यह सुनकर किशोर की भाभी साड़ी बदल लेती है और अपने अंदर उमड़ते आंसुओं के लावें को दबाकर किशोर बाबू के सांस्कृतिक पहल का नजारा देखती

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा वाया बाइपास - पृ. 61

है। यहाँ पुरुष परंपरा और संस्कृति की आड़ में हमेशा से स्त्री को दबकर जीने को मजबूर करता है। पढ़ी लिखी होने पर भी वह पुरुष की आज्ञा का पालन करने के लिए मज़बूर हो जाती है।

पुरुष वर्चस्व प्रधान समाज में परंपरागत रूढ़ी, रीति और रिवाज केवल स्त्री को ही बाँधकर जीने को मज़बूर करता है। मुस्लिम धर्मावलंबी अपने पवित्र ग्रंथ के रूप में 'कुरान शरीफ' को मानते हैं और इस धर्म ग्रंथ में पुरुषों ने अपने हितानुसार बदलाव किए। मुस्लीम धर्म में तो महिलाओं का मस्जिद जाने तक पर प्रतिबन्ध है। उसे अपने पूरे शरीर को छिपाकर रखने का आदेश दिया जाता है। ऐसे विश्वास का प्रचलन होता है कि जो स्त्री ऐसा नहीं करती वह मरने के बाद अवश्य नरक चली जाती है। 'कलि-कथा वाया बाइपास' उपन्यास में किशोर बाबू के स्कूल में "मदनमोहन सिधानियाँ की पत्नी को सारे दिन पीढ़े पर घूंघट ओढ़कर बैठे रहना पड़ता था यहाँ तक कि खाते समय ग्रास मुंह की जगह नाक में चला जाता था। इस बात पर शांतनु जो हंसा था, उन्हें आज भी याद है।"[1] हमारा समाज आज भी पुरुषवादी मानसिकता से ऊपर नहीं उठ पाया है। परंपरागत रूढ़ी, रीति-रिवाज और पुरुष वर्चस्ववादी संस्कृति के अनुसार स्त्रियों को ढाँचे में डाला गया। आज भी स्त्री इससे आज़ाद नहीं हुई।

पश्चिमी शिक्षा एवं संपर्क से, याने वैज्ञानिक चिन्तन पद्धति से हम अधिक तर्क संगत होने लगे हैं। जिसके कारण हम परम्परागत विश्वासों एवं रूढ़ियों के

---

1. अलका सरावगी - कलि कथा वाया बाइपास - पृ. 201

विश्वास को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। उस पर प्रश्न करने लगे। इन प्रश्नों के आगे निराधार परंपराएँ एवं रूढ़ियाँ जीवन से हटने लगीं और आधारभूत इतिहास एवं परम्परा को हम स्वीकार करने लगे। फिर भी गरीबी, वैज्ञानिक चिंतन एवं लोकतांत्रिक समझ के अभाव में हम रूढ़ियों का पीछा करने को मज़बूर हैं। असल में हम, दोनों के बीच की स्थिति में हैं।

2.1.3 प्रेम के सन्दर्भ में मर्दवादी मानसिकता

मानव मन कभी भी प्रेम और सौन्दर्य से अछूता नहीं रहता। क्योंकि स्त्री, सौन्दर्य और प्रेम इन तीनों का मानव मन से गहरा सम्बन्ध होता है। स्त्री और पुरुष के बीच मानवीय आकर्षणों के साथ जब एक अंतरंगता विकसित होती है तो उस अनुभूति को प्यार, इश्क, मोहबत, लव, प्रेम, कातल आदि नामों से पुकारा जाता है। प्रेम में न तो जाति-पाँति आड़े आती है, और न छोटा-बड़ा, प्रेम प्रेम है। प्रेम के इस जाल में फँसने वाले लगभग स्त्रियाँ ही होती हैं। नारी जिससे एक बार प्रेम करती है, जीवन भर उसी की होकर रहती है। झूठे प्रेम और कसमें देकर पुरुष जल्दी ही औरतों का मन जीत लेते हैं और फिर उनका शारीरिक शोषण करते हैं। नारी-सौन्दर्य से हठात् आकृष्ट तथा पुलकित होने वाले पुरुष ने, नारी को अपनी कामाग्नि शांत करने का साधन समझ लिया। वह अपनी शक्ति, शौर्य और पराक्रम का प्रदर्शन करके नारी पर अपनी प्रभुता दिखाता है। "प्रेम करने वाले ये तमाम प्रेमी पुरुष अहम् के चलते ऐसे-ऐसे कारनामे कर डालते हैं जो औरतों को जीवन-भर आत्मग्लानि में कुढ़ने के लिए छोड़ देते हैं। प्रेम की आड़ में लड़की से उसका

शरीर मांगना, उसे भावनात्मक रूप से ब्लैकमेल करना, उसे बदनाम करने का भय दिखाना, लड़की का नाम लेकर मरने का प्रयास करना या उस पर घातक प्रहार करना पुरुषवादी मनःस्थिति के प्रमाण है।"[1] यानी पुरुष नारी से प्रेम करता है तो उससे प्रेम का प्रतिदान चाहता है। प्रेम में स्त्री आगे पीछे नहीं देखती, वह मन देखती है। स्त्री शरीर से परे प्रेम कर सकती है पुरुष नहीं कर सकता।

पुरुष अपनी पत्नी से अपने पूर्व प्रेम प्रसंग को बिना किसी डर या संकोच के बताकर खुद को रिलैक्स महसूस करता है परन्तु स्त्री यदि अपने आकर्षण मात्र का संकेत भी दे दे तो पुरुष की दृष्टि में वह सदा के लिये संदेह के घेरे में आ जाती है। प्रेम करने के जुर्म के कारण ही मन ही मन पुरुष उसे चरित्रहीन समझकर अपना नहीं पाता। पुरुष प्रेम करता है पुरुष चाहता है कि शादी के समय लड़की एकदम अनछुई कुंवारी हो, पहले उसका किसी से कोई सम्बन्ध न रहा हो। जबकि पुरुष नित्य नई औरतों के साथ सम्बन्ध बनाने का प्रयास करता है। स्त्री के चरित्र पर एक बार दाग लग जाती है तो वह मिटाने पर भी नहीं मिटती। "इतिहास गवाह है कि पुरुषों की बड़ी सफलताओं की प्रेरणादायिनी स्त्री ही रही है। पुरुष का ज़रा सा प्रेम पाकर स्त्री निहाल को जाती है। वह प्रेम को सेक्स से अधिक महत्व देती है। पुरुष सेक्स का आनन्द प्रेम के बिना भी उठा सकता है जबकि स्त्री प्रेम से सहलाने के इन्तज़ार में बूढ़ी हो जाती है। वह जल्दी उत्तेजित नहीं हो सकती। भारतीय शास्त्रों में प्रेम तथा काम सम्बन्धों को महत्व दिया गया है। बिना प्रेम के

---

1. मनीषा - हम सभ्य औरतें - पृ. 152

काम सम्बन्ध पशुवत् माना गया है।"[1] पुरुष के प्रति स्त्री की इच्छा केवल शरीर के प्रति नहीं, वह शरीर के अतिरिक्त सम्पूर्ण व्यक्तित्व की विशिष्टताओं के प्रति जागृत हो सकती है। प्रेम का रिश्ता शरीर के परे हृदय से होता है। प्रेम के अलावा किया गया स्त्री-पुरुष संबन्ध शारीरिक माना जाता है।

प्रेम में पुरुष स्त्री के साथ हिंसात्मक होने लगता है। यदि कोई स्त्री पुरुष के एकतरफा प्रेम को ठुकरा देती है तो वह उस पर ज़बरदस्ती करने लगता है। यह पुरुष की विकृत मानसिकता का प्रमाण है। इस सन्दर्भ में कुमुद शर्मा लिखती हैं - "पुरुष की हिंसक प्रवृत्ति की चरम सीमा से प्रेम संबन्ध भी अछूते नहीं है। प्रेम-संबन्धों में भी उसकी हिंसा उभरकर सामने आती है। यह हिंसा किसी लड़की के प्रति एकतरफा पागल प्रेमी की भी हो सकती है अथवा परिस्थितिवश प्रेम को विवाह में परिणत कर पाने में असमर्थ प्रेमिका के प्रति विद्रोह और बदले की भावना से भरे हुए पुरुष की भी। इसीलिए ऐसा पुरुष जब प्रेम हासिल नहीं कर पाता तो 'तू मेरी नहीं तो किसी की नहीं' भावना से भर प्रेमिका के मुंह पर तेजाब उँड़ेल देता है या उसकी हत्या कर बैठता है। समाज में व्याप्त इसी जबरदस्ती और पाशविकता का अभिजात रूप गीतों या शायरी में भी दिखाई पड़ता है - 'तुम अगर मुझको न चाहो तो कोई बात नहीं, तुम किसी और को चाहोगी तो मुश्किल होगी।"[2] एकतरफा प्रेम करने वाले लड़के चाहे तो बड़ी आसानी से लड़की को बदनाम कर देते हैं। उसके बारे में आस-पास के लोगों के बीच बुराई फैला सकते हैं, उसे बदचलन, आवारा जैसे घिनौने लफ्जों से प्रचारित करवाते हैं।

---

1. डॉ. उषा कीर्ति राणावत - स्त्री पुरुषों के संबन्धों का विमर्श - पृ. 23
2. कुमुद शर्मा - आधी दुनिया का सच - पृ. 19

अलका सरावगी का उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में के.वी. गुरुचरण से प्रेम के सम्बन्ध में पूछता है तो गुरुचरण उससे कहता है - "मैं देखना चाहता हूँ कि क्या कोई औरत मेरे लिए कृष्ण की मीरा बन सकती है? कोई राधा की तरह प्रेम कर सकती है? लोग शर्तों पर प्रेम करते हैं। तुम चाहो तो मैं चाहूँ। लोग माप कर प्रेम करते हैं। इतना उतना। लोग कुनकुना प्रेम करते हैं। जिसे अपना कुछ बचाना हो, वह प्रेम का अर्थ नहीं जान सकता। लेकिन यह अर्थ किसी को जानना ही नहीं होता। लोग प्रेम के आभास को प्रेम समझ लेते हैं इसलिए वह टिकता नहीं। प्रायः लोग तो जीवन में एक पल के लिए भी किसी से ऐसा प्रेम नहीं कर पाते, जो असल में प्रेम है।"[1] पुरुष का मन कभी भी एक ही प्रेम में स्थिर नहीं रहता। इसलिए वह कहता है कि सच्चे प्रेम की तलाश में इधर-उधर वह भटक रहा है। लेकिन वास्तव में पुरुष कभी यह नहीं सोचता कि उस लड़की के ऊपर क्या गुज़रा होगा जब वह पहली वाली को छोड़कर दूसरी वाली के पीछे जाता है। पुरुष के लिए प्रेम केवल एक वासना है। शारीरिक तृप्ति का साधन। उपन्यास में एक जगह के.वी कहता है - "एक खास उम्र में शरीर के कुछ रसायन मिलकर दिमाग में एक विशेष अनुभूति पैदा करते हैं, वही प्रेम हैं।"[2] इस प्रकार देखा जाए तो प्यार के क्षेत्र में भी पुरुष द्वारा स्त्री का शारीरिक और मानसिक शोषण होता रहता है।

---

1. अलका सरावगी - एक ब्रेक के बाद - पृ. 93
2. वही - पृ. 90

2.1.4 परिवार में स्त्री की स्थिति

समाज और परिवार के दबाव से घर बाहर नारी की ज़िन्दगी बड़ी कारुणिक हो उठती है। घर में उसे सेवा, त्याग, करुणा एवं सहनशील पत्नी और माता की भूमिका निभानी पड़ती है। स्त्री को दी गयी भूमिका में पति व परिवार के प्रति एकनिष्ठ समर्पण है। एक स्त्री के लिए उसका परिवार ही सब कुछ होता है। पति के इर्द-गिर्द सिमटी दुनिया ही उसका परिवार है। पति की मरजी पर हंसने रोने वाली इन औरतों की दुनिया सिर्फ और सिर्फ अपने पति के इर्द-गिर्द सिमटी होती है। घर से इतर बाहरी क्षेत्रों में कार्यरत स्त्रियों को दोनों भूमिकाओं को निभाते हुए भी प्रमुखता घर को देने की अनिवार्यता है। घर में पति की हुकूमत चलती है और स्त्री चाहे कितनी भी पढ़ी-लिखी क्यों न हो वे अपने परिवार की सेवा करती रहती है क्योंकि वह अपने परिवार को टूटते हुए नहीं देखना चाहती "घर जहाँ एक बुनियादी संरचना है, वहीं परिवार एक सामाजिक इकाई। पर व्यवहार रूप में अपने यहाँ घर और परिवार को एक दूसरे का पर्यायवाची ही समझा जाता है और दोनों इकाइयों के भीतर स्त्री और पुरुष के बीच जो आर्थिक और सामाजिक भेदभाव है, उसकी मात्रा भी लगभग बराबर ही दीखती है। चाहे घर तथा उसके भीतर के भौतिक उपादानों की मालिकी की बात हो, अथवा समाज में प्रतिष्ठा की, हर जगह पारंपरिक तौर से पुरुष का नंबर काफी पहले जाता है और स्त्री काफी बाद में।"[1] पुरुषों का कार्य जहाँ विविधतापूर्ण साहस भर था, वहीं महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर

---

1. मृणाल पाण्डे - स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक - पृ. 86

एवं गृहस्थी की दीवारों में बंद हो कर उबाऊ और थका देने वाला था। गृहस्थी का भार संभालने पर भी स्त्री को पुरुष की तुलना में परिवार में मान्यता नहीं मिलती है।

अनामिका का उपन्यास 'तिनका तिनके पास' में तारा की माँ एक सेक्स-वर्कर है। वह अपना जिस्म बेचकर बेटी को पढ़ाती है। उपन्यास में एक जगह गृहस्थिन की विवशता के बारे में बेटी से वह कहती है - "बेटी, एक तरह की कॉल-गर्ल हर औरत होती है - ब्याहता गृहस्थिन भी - कॉल गर्ल को तो यह छूट भी होती होगी कि हर कॉल पर वह प्रस्तुत न हो, पर गृहस्थिन की क्या मजाल। अजब होता है वह दृश्य जब पिटी हुई पत्नी को समझा-बुझाकर या पकड़-धकड़कर माँएँ या सासें वापस पति-परमेश्वर के कमरे भेजती हैं कि पति को बिन माफी माँगे ही माफ करे, काम से थका-हारा चिड़चिडा प्राणी है - 'मर्द बच्चा' - औरत की छाँह चाहिए उसको - 'दिल से तो बुरा नहीं बेचारा' - क्या बीतती है पत्नी के मन पर?... और कभी किसी क्षण अपनी तरंग पर पति परमेश्वर के गाल पर हाथ रख दिया तो ऐसी बिकट झाड़ सुननी पड़ती है कि पूछो मत। अपना-सा मुँह लेकर रह जाने की पीड़ा अभी तुमने नहीं झेली होगी, तारा, क्योंकि अभी तुम ब्याहता नहीं हो!"[1] याने कि वैवाहिक जीवन में स्त्री को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनमें से एक है अपनी इच्छा न होने पर भी पत्नी को पति का मन बहलाना पड़ता है। इसप्रकार पुरुष स्त्री का शारीरिक शोषण करता है।

परिवार का प्रभाव स्त्री-पुरुष के जीवन पर सर्वाधिक पड़ता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य किसी न किसी परिवार से जुड़ा रहता है। परिवार में स्त्री-

---

1. अनामिका - तिनका तिनके पास - पृ. 64

पुरुष का सहयोग होना ज़रूरी है ऐसा न होने पर पति-पत्नी में टकराव, वैमनस्य और आपसी संघर्ष के कारण पारिवारिक विघटन हो जाता है, और इसका असर ज़्यादातर बच्चों पर ही पड़ता है। बच्चे सदैव अपने माता-पिता के आचरण का अनुगमन करते हैं। अतः परिवार में माता-पिता की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। हर परिवार के अपने नियम-कयदे, संस्कार एवं मान्यताएँ होती हैं और यदि बड़े ही उनका पालन न करें तो बच्चों से उनके पालन की अपेक्षा करना व्यर्थ है। "बच्चों की हर समस्या एवं हर ज़रूरत को माता-पिता को ही संभालना पड़ता है। माता-पिता ही बच्चों के विश्वसनीय मित्र हो सकते हैं। यदि एकल परिवारों में रहने वाले बच्चों को माता-पिता का पर्याप्त साथ नहीं मिलता तो या तो बच्चे बीमार हो जाते हैं। उनमें मानसिक रोग या उलझने आते हैं या फिर बड़े हुए तो अपने सुख और मनोरंजन का साधन घर के बाहर ढूँढ, लेते हैं और अनेक बच्चे ड्रग्स या अन्य नशों की चपेट में आ जाते हैं। बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए आवश्यक है कि जीवन के प्रारम्भिक 20 वर्षों में वे बच्चों का पूरा ध्यान रखें।"[1] बचपन से बच्चों में अच्छे स्वभाव उत्पन्न करने में उनके परिवारवालों का बहुत बड़ा हाथ होता है। अच्छे संस्कार बच्चों में परिवार से ही उत्पन्न होते हैं।

दाम्पत्य सम्बन्धों का विघटन आज के ज़माने में आम बात है। पारिवारिक विघटन के कई कारण हो सकते हैं जैसे कि शराबी पति, शंकालु पति-पत्नी, सास-बहू में अनबन, संयुक्त परिवारों का छोटे परिवारों में विभक्त हो जाना आदि पारिवारिक विघटन ही है। वैवाहिक सम्बन्धों की समाप्ति तथा पारिवारिक एकता

---

1. अंजली भारती - घर परिवार और रिश्ते - पृ. 43

में भ्रंश इसी प्रकार के विघटन की सूचना होती है। पति-पत्नी का पारस्परिक विश्वास आधे से अधिक समस्याओं का समाधान तो स्वतः ही कर देता है। पारस्परिक विश्वास के अभाव में एक दूसरे के चरित्र पर संदेश उत्पन्न होता है। यदि पति-पत्नी आपस में एक दूसरे के प्रति सच्चे हैं तो विश्वास बनता है। यह तभी सम्भव है जब एक दूसरे के साथ वे निष्ठा, सम्मान तथा आदर का भाव रखें, एक दूसरे के दुःख, कष्ट और मानसिक संवेदनाओं को आत्मसात कर सहभागी बनें। "व्यक्ति सामाजिकता को ध्यान में रखते हुए शांत भले ही हो जाए पर मन से कभी यह बात निकाल नहीं पाता कि जीवन-साथी ने उससे विश्वासघात किया है और उसकी अस्मिता एवं सम्मान को ठेस पहुँचाई है। यदि व्यक्ति वापस पारिवारिक जीवन में आ भी जाता है तो भी इसकी परछाइयाँ लम्बे समय तक उसका पीछा करती रहती है। साथ ही उसे हमेशा शंका की नज़र से देखा जाता है जिससे वह खीजता रहता है। साथ ही परिवार के लोगों द्वारा उसके हर कार्यकलाप पर नज़र रखी जाती है व तीव्र आलोचना का सामना भी करना पड़ सकता है।"[1] परस्पर विश्वास के अभाव में दाम्पत्य बिखर जाता है, विश्वास ही दाम्पत्य का मूल आधार है। संदेह का विष परिवार की सुख शांति को विषाक्त बना देता है। भले ही वह पति के हृदय में उपजा हो या पत्नी के हृदय में। शक का छोटा सा बीज कभी-कभी बढ़कर इतना बड़ा वृक्ष बन जाता है कि वह संपूर्ण पारिवारिक परिवेश को विषाक्त कर देता है।

---

1. अंजली भारती - घर-परिवार और रिश्ते - पृ. 148

परिवार में यदि पति-पत्नी दोनों ही बाहर कार्यशील है तो घर के कामों को लेकर अनेक समस्याएँ उठती हैं। पति यदि समझदार है तो पत्नी को घर के कामों में सहयोग देता है, तब तो स्त्री दोहरे उत्तरदायित्व को सरलता से झेल जाती है। लेकिन ऐसा नहीं होता। ज़्यातादर पति घर के सभी काम पत्नी से ही करवाते हैं दफ़्तर के कामों के साथ-साथ उसे घर के काम भी करने पड़ते हैं। इससे पत्नी में तनाव बढ़ता है और कार्याधिक्य की थकान से वह टूटने लगती है। घर का पूरा काम तथा बच्चों और परिवारवालों का ध्यान रखने पर भी उसे आखिर गलियाँ और मार-पीठ ही मिलती है। ऐसे अवसरों पर परिवारवाले, स्त्री भी परिवार का सदस्य है, यह भी इनसान है, उसका भी दिल-दिमाग है, के बातें भुला देते हैं। इतना सब करने के बाद भी उसके स्वास्थ और पीड़ा के बारे में कोई उससे पूछता तक नहीं, और न ही उसका कोई अपना घर होता है "औरतों का अपना घर होता तो क्या ऐसा ही बसा देते उसे। स्त्री का तो मायका होता है या ससुराल। घर कहाँ है उसका। एक चिड़िया का भी घोंसला होता है, जानवरों की खोट या पेड़ की घनी छाह। पर स्त्री का घर? अब बना रही है स्त्री अपना घर। वह कमाती है। अपने नाम पर जमीन खरीद रही है - आओ, मेरे घर में रहो, मेरे शर्तों पर। ये पंक्तियाँ लिखते वक्त कई स्त्रियाँ मेरे जेहन में हैं, पर उनका प्रतिशत बहुत कम है। कुछ स्त्रियाँ बहुत कमाती हैं और अपनी कमाई पुरुष के नाम पर बनाए जाने वाले घर में झोंक देती हैं, जिस घर पर उसके सास-ससुर, नाते रिश्तेदार गाहे बगाहे दावे ठोकते हैं।"[1] कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री के लिए कोई घर नहीं होता अगर वह

---

1. गीताश्री - स्त्री आकांक्षा के मानचित्र - पृ. 126

घर उसके पैसों से बना है तो भी उस घर की हुकूमत उसका पति ही करता है। यानी स्त्री का मायका उसके पिता का होता है तो ससुराल ससुर का। आज भी घर के भीतर पति का ही वर्चस्व स्थापित है। परिवार में स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे के नागरिक की है। स्त्री के लिए पितृसत्तात्मक संरचनावाले समाज में अकेलापन एक अभिशाप हैं।

घरेलू औरत का जीवन उम्र के साथ-साथ बेहद नीरस एवं दुःखपूर्ण होता है। उम्र भर वह घर में ऐसे फँस जाती है कि उसे पता ही नहीं चलता कि कब उसकी पकड़ से उसका जीवन छूट गया। अनामिका के 'प्रतिनायक' नामक संग्रह की 'गृहस्थी' शीर्षक कहानी में लेखिका ने पुरुषमेधा परिवार की निष्ठुरता की ओर इशारा किया है। चूल्हा-चक्की करने, बच्चे पैदा करने उन्हें पाल-पोस कर बड़ा करने, अपने पति और उनके परिवारवालों की सेवा करने, सुबह से शाम तक रसोई-घर में काम करने के लिए मात्र उसका उपयोग किया जाता था। इस तरह वह घर के चार दीवारी में बन्ध हो जाती है। शादी के बाद लड़कियों की जिन्दगी बिल्कुल बदल जाती है। उसे अपने पति की मर्जी के मुताबिक जीवन जीना पड़ता है। कहानी की नायिका की भी ऐसी हालत है। शादी से पहले लड़कियों को यह सीख दी जाती है कि वह अपने ससुराल में सब कुछ सहकर चुप रहे। कहानी में अपनी माँ द्वारा नायिका को यह सीख दी जाती है कि - "लडकियों का दबा, सकुचा रहना ही शोभता है, बेटी? कोई ऐसी हरकत जो सबकी आँखों में तुम्हें गड़ा दे, कभी अच्छी नहीं होती तो जोर से हँसना, बोलना भी अपराध हुआ करता है

लड़कियों के लिए।"[1] यानी कि शादी के बाद लड़कियों की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। उनका ज़ोर से हंसना और बोलना तक अपराध हो जाता है। उस पर रोक लगायी जाती है। वास्तव में स्त्रियों पर इस प्रकार के रोक लगाने के पीछे पुरुष प्रधान समाज ही है, लेखिका इसकी ओर इशारा करती है।

'गृहस्थी' कहानी में पति, पत्नी और बेटी सनु है। पति-पत्नी के बीच छोटी-छोटी बातों पर अनबन होती है। घर में पति की हुकूमत चलती रहती है। एक दिन उसका पति किसी गाड़ी के नीचे आ जाता है। पत्नी दिन रात मेहनत करके उसकी सेवा करती है। इलाज के लिए पैसे खत्म हो जाने पर उसकी माँ अपने गहने बेच देती है। इतना कुछ अपने पति के लिए करने पर भी पति की सोच बहुत घटिया है। वह सोचता है - "इन दिनों सहसा इतनी चपल क्यों हो चली है? इधर मैं अपंग पड़ा हूँ और यह फुर्ती में रहती है - मुझे चिढ़ाने को, डॉक्टर को प्रभावित करने के लिए या फिर नैहर के गुमान में"[2] दाम्पत्य जीवन की असफलता के पीछे पति-पत्नी के अहं की टकराहट और आर्थिक स्थितियाँ हैं तो कहीं आपसी अविश्वास और संदेह है। पति-पत्नी के दाम्पत्य सुख को शक नष्ट कर देता है।

उसका पति फिर से काम पर जाने लगता है। पर उसका जीवन सहज नहीं होता। पति ऑफिस के कामों में उलझता रहता है, पत्नी पर ज़्यादा ध्यान नहीं देता। घर में पुरुष अपने को घर का मालिक और पत्नी को नौकरानी समझता है। इस

---

1. अनामिका - प्रतिनायक (कहानी संकलन) - पृ. 27
2. वही - पृ. 29

तरह का व्यवहार रखने पर दाम्पत्य कभी सन्तुष्ट नहीं बन सकता। लेखिका इस बात की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करती है।

अलका सरावगी के दूसरी कहानी संग्रह के दूसरी कहानी 'ये रहगुजर न होती' में भी परिवार में दिखने वाले पुरुष की प्रबुद्ध दृष्टि को ही दिखाया गया है। कहानी में एक ऐसे पिता का चित्रण है जो अपनी पत्नी और बच्चों पर अपना रोब बनाये रखना चाहता है। बरसों बाद अपने बच्चे के साथ कथा नायिका अपने दादा से मिलने आती है लेकिन उसके बाबा उससे और उसके बच्चे से इस तरह का व्यवहार करते हैं कि जैसे वे लोग उसकी पोती और उसका बच्चा न होकर कोई और हो। बाबा के इस तरह के बरताव से वह बचपन से ही वाकिफ थी। उसकी माँ और दादी गुज़र गये थे। वे दोनों ही बाबा से डरते थे। बाबा के सामने वे कुछ नहीं कहती थीं। उसकी दादी अन्तिम दिनों में पगली सी हो गयी थी लेकिन बाबा डाँटते तो चुप हो जाती थी। बाबा अपने बच्चों को माँ के मरते वक्त उसके चिता को हाथ तक लगाने नहीं दिये थे। बाबा कहते हैं कि जिन लोगों ने जीते जी माँ से पानी के लिये तक नहीं पूछा वे लोग माँ को फूँककर दुनिया को दिखाना चाहते थे कि वे माँ के लायक बेटे हैं। बेटी का मन किया कि वे चिल्ला-चिल्ला कर अपने बाबा से पूछे - "अपनी माँ को उन लोगों ने जीते-जी पानी तक नहीं पिलाया था आपने पिलाने नहीं दिया? उनसे बदला लेने के लिए आपने उनकी माँ को अपनी औरत को तीन साल इस कमरे में कैद रखा, ताकि वह किसी से न मिल सके। वह तीन साल तक ऊपर अपने कमरे में ले जाए जाने के लिए कहती रही, पर आपने

उसकी एक नहीं सुनी...।"[1] पुरुष प्रधान समाज में औरत का स्थान गुलाम जैसा है, वैवाहिक जीवन में पुरुष ही फैसला करता है। पत्नी पर पति का पूर्ण अधिकार रहता है। घर की चार दीवारी में अपनी पत्नी को कैद कर रखने की पुरुष की विकृत मानसिकता पर लेखिका यहाँ व्यंग्य करती है।

महुआ माजी के दो उपन्यास 'मैं बोरिशाइल्ला' और 'मरंग गोडा नीलकण्ठ हुआ' प्रकाशित हुए। कहानी के क्षेत्र में उनकी दो कहानियाँ प्रकाशित है। 'रोल मॉडल' वागर्थ सितम्बर 2005) में और नया ज्ञानोदय के प्रेम महाविशेषांक-3 (2009) में प्रकाशित 'चन्द्रबिंदु'।

'रोल मॉडल' कहानी में महुआ माजी ने स्त्री के वस्त्रधारण के बहाने वर्तमान समाज में लड़के लड़कियों की स्वतंत्र चिन्तन धारा पर विशेष रूप से बल दिया है। महिलाओं के कपड़े पहनने के तौर तरीके के संबन्ध में महुआ माजी कहती है। आज की लड़कियाँ साड़ी से भी ज़्यादा सलवार कमीज़, चुडीदार कमीज़ या नाइटी पहनना पसन्द करती है। इसका कारण यह है कि शायद ये सब पोशाक उन्हें साड़ी से भी ज़्यादा कमफर्ट, आरामदायक है। एक और बात यह है कि साड़ी पहनते वक्त महिलाओं को अपने शरीर का ज़्यादा ध्यान रखना पड़ता है। जैसे कि साड़ी में खासकर पेट, पीठ, कमर आदि दिखने की परेशानियाँ हैं। यहाँ तक कि साडी का पल्लू भी संभालना पड़ता है। जबकि अन्य पोशाकों में महिलाओं को इतनी दिक्कत नहीं होती। "मुहल्ले के लगभग सभी संयुक्त परिवारों में, जहाँ अभी

---

1. अलका सरावगी - दूसरी कहानी - पृ. 11

भी सास, ससुर, ननद का दबदबा है, बहुए साड़ी में ही रहकर अपनी शालीनता दर्शा रही हैं। यह बात और है कि आमने-सामने वाली क्रांतिकारी औरतों को क्रांतिकारी कपड़ों में देख वे अंदर ही अंदर छटपटाती रहीं और लुका-छिपाकर अपने लिए एकाध सिलवाकर रख लिया जिसे मायके या पति के साथ छुट्टियों में बाहर घूमने जाते वक्त वे जरूर साथ ले गयी। उन कई दिनों तक ही सही, उन कपड़ों में उन्होंने खूब तस्वीरें खिंचवाई और मॉडर्न, कमसिन, स्वाधीन, क्रांतिकारी वगैरह वगैरह होने के अहसास से भरपूर रही।"[1] इससे हमें यह मालूम होता है कि ज़्यादातर महिलाएँ वे कपड़े पहनना ही समीचीन मानती हैं जो उन्हें आरामदायक हो। शादी के बाद लड़कियों से कहा जाता है वे यह न पहने, वह पहनने, जो कि उसका मर्दा चाहता है। लड़कियों को शादी के बाद अपने मन पसन्द कपड़े पहनने की भी छूट नहीं होती। ऐसे पुरुष वर्चस्व की ओर लेखिका अपना आक्रोश व्यक्त करती है। लेखिका कहती हैं कि महिलाएँ क्या पहनना चाहती हैं ये बातें महिलाओं पर छोड़ दें।

पुरुष खुद मनचाहे परिधान पहनकर ऐसा कह नहीं सकते कि पत्नी उसके अनुसार ही कपड़े पहनें। पहनावे को लेकर शादी के बाद तो लड़कियों की जिम्मेदारी परेशानी और भी बढ़ जाती है। वह एक नए परिवार का हिस्सा बनती है। उनके ऊपर इस बात की जिम्मेदारी होती है कि नए परिवार के मुताबिक वे अपने पहनावे और रहन-सहन में बदलाव लाएँ। शादी के बाद भी चाहे पुरुष हो या

---

1. महुआ माजी - रोल मॉडल - पृ. 49, वागर्थ सितम्बर 2005

महिला, इंसान ही होता है। रातोंरात उसमें कोई परिवर्तन तो आता नहीं। पुरुषों के मर्दवादी रवैये पर अपनी इस कहानी के ज़रिए लेखिका आवाज़ उठाती हैं।

महुआ माजी की एक ओर कहानी है 'चंद्रबिंदु'। अपनी इस कहानी में भी लेखिका पुरुष वर्चस्व की झलक दिखलाती है। कहानी की नायिका अनु का पति दूसरी औरतों के साथ संबन्ध रखता था। अनु और उसके पति का प्रेम विवाह था। लेकिन शादी के कुछ ही महीने बाद उसने देखा कि उसका पति उसकी सबसे प्रिय सहेली के साथ संबन्ध रखता है। काफी हल्ला हंगामा, रोना-धोना करने के बाद भी उसमें परिवर्तन नहीं आया। "कभी करीबी दोस्त की पत्नी, कभी दफ्तर की स्टेनो, कभी पड़ोस की नवयुवती या विवाहिता के प्रति उसके हिस्से की मुग्धता को बारम्बर विचरते देख वह आहत होती रही, अपमान से तिलमिलाती रही, अपने प्रति हीन भावना से ग्रसित होती रही। क्या कमी है उसमें? क्या वह सुंदर नहीं? आकर्षक नहीं? आईने के सामने खड़ी होकर अपनी देह के हर कटाव, हर उभार को निहारती वह। लंबी छरहरी देह!"[1] दाम्पत्य सम्बन्धों की रिक्तता का एक चिरपरिचित बिन्दु यह है कि विवाह के बाद पति का दूसरी स्त्रियों से सम्बन्ध रखना। कोई भी स्त्री बरदाश्त नहीं कर सकती।

अनु अपने पति को उनके विवाह-वार्षिकी के दिन में भी दूसरी स्त्री के साथ देखती है "अपने विवाह वार्षिकी के दिन उसने अपने पति को उन्हीं की एक दूर की रिश्तेदार के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देख लिया था। पति-पत्नी के

---

1. महुआमाजी - चन्द्रबिंदु (कहानी) - पृ. 22

जीवन के इस अति विशिष्ट दिन, विवाह वार्षिकी के दिन को भी नहीं बख्शा उन्होंने? मौका मिलते ही....? छीः इतना अपमान?"[1] एक पत्नी के लिए इतनी बड़ी दुःखात्मक अवस्था और क्या हो सकती है कि वह अपने पति को दूसरी औरत के साथ देखे, वह भी अपने विवाह वार्षिक के दिन में। पुरुष वर्चस्ववादी समाज में पुरुष एक से अधिक स्त्रियों के साथ रिश्ता रखता है लेकिन स्त्रियाँ अगर ऐसा करती हैं तो वे बदचलन औरत कही जाती हैं।

2.1.5 राजनीति के क्षेत्र में स्त्री का शोषण

राजनीति के क्षेत्र में स्त्री अपने लिए निराशाजनक माहौल पाती है। राजनीति के प्रति उसका सहज अकर्षण बढ़ रहा है। लेकिन उसमें प्रवेश उसे आसान नहीं दिखता। राजनीति जैसे संकीर्ण पुरुष प्रधान क्षेत्र में पुरुष जितनी कुशलता से कार्य कर पाता है, उतनी कुशलता से ज़्यादातर स्त्री कार्य नहीं कर पाती है। स्वतंत्रता हर किसी के मन की कामना होती है। गुलामी के बन्धनों को तोड़कर मानव प्रगति की ओर बढ़ना चाहता है। अर्थात् इसके लिए समाज के विभिन्न वर्ग संघर्ष का रास्ता अपनाते हैं। समाज के अन्य वर्गों की तरह महिलाएँ भी संघर्ष का मार्ग अपनाने लगीं। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में स्त्रियों ने भाग लिया था। लेकिन उसके इतिहास में उसे नकारा गया।

पुरुष राजनीति के क्षेत्र में अपना हक जमाकर रखने के लिए किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार हो जाता है। पुरुष राजनीति में जाता है, संगठनों का

---

1. महुआमाजी - चन्द्रबिंदु (कहानी) - पृ. 24

सदस्य भी बनता है, एक दूसरे को काटता है, खून भी करता है। दूसरों की ज़िन्दगी खत्म करने की कोशिश भी करता रहता है। राजनीति में ज़्यादातर पुरुष सत्ता की साझेदारी औरतों से नहीं करना चाहते। क्योंकि औरतों को राजनीतिक शरण देने में कट्टर पुरुष पंथियों का ऐतराज होता है। वोटों की राजनीति एवं चुनावी समीकरण में डूबी भारत सरकार को न किसी आदर्श की चिन्ता है न किन्हीं नैतिक मूल्यों की, और न ही महिलाओं के प्रति उदार दृष्टि। आज़ादी और लोकतंत्र की लड़ाई में बहुत-सी महिलाएँ राजनीतिक क्षितिज पर उभरी थीं। रानी लक्ष्मीबाई से लेकर एनी बसेंट, मिसीस रानडे, विजयलक्ष्मी पंडित, इंदिरा गाँधी आदि इनमें प्रमुख थीं। इंदिरा गाँधी के गुजर जाने के सालों बाद भी राजनीति में सशक्त स्त्रियों की संख्या कम होती गयी। जोड़-तोड़, भाग-दौड़ और राजनीतिक दुरभिसंधियों के चलते राजनीति में स्त्री कहीं खो गई सी नज़र आई। चर्चा के केन्द्र में वह कम आई और राजनीति में स्त्रियों का प्रभाव नगण्य होता गया। लोक सभा और विधान सभाओं में महिला प्रतिनिधित्व अभी तक चार-पाँच प्रतिशत के आगे-पीछे होता रहा, बढ़ा नहीं। भारत जैसे इस विशाल देश में महिला मतदाताओं की संख्या अधिक होने पर भी महिलाओं का यह प्रतिनिधित्व चिंतनीय है। भले ही राजनीति में नारियों के प्रवेश की गति कुछ धीमी अवश्य रही, पर उनकी शक्ति क्षमता, कार्यकुशलता पर कभी किसी ने अविश्वास नहीं किया है।

राजनीति में स्वार्थ उभरता गया और सेवा समर्पण की भावना गौण होती गई। राजनीति एक गंदा खेल बनती गयी जहाँ नेक मनुष्य जाने में हिचकता है। राजनीति में, गिरते हुए चारित्रिक व नैतिक मूल्यों के कारण भारतीय स्त्री भी इस

क्षेत्र के प्रति उदासीन होती रही। वास्तव में पुरुषवादी मानसिकता महिला की सत्ता या व्यवस्था में भागीदारी को हमेशा शक की दृष्टि से देखती रही है। उसे कमज़ोर एवं अज्ञानी मानता आ रहा है।

2.1.6 स्त्री शोषण : शिक्षा के सन्दर्भ में

स्त्री की उन्नति सभी दिशाओं में अभी तक नहीं हुई है। गावों और छोटे-छोटे प्रदेशों में ऐसी स्त्रियाँ आज भी जीवित हैं जो बिल्कुल बाहरी दुनिया से वंचित, अशिक्षित और अपनी इच्छा न होते हुए भी वेश्या का जीवन बिताने के लिए मज़बूर हैं। स्त्री शिक्षा को बढ़ावा दिलाने के लिए सरकार की ओर से भी विभिन्न कदम और कार्य किये जा रहे हैं। स्वतंत्र भारत के संविधान में नारी को शोषण से बचाने के उपाय, श्रम में समान भागीदारी, न्यूनतम पारिश्रमिक सरकारी सेवाओं तथा सार्वजनिक उपक्रमों में विशेष छूट आदि अनेक प्रावधान रखे गये। तब शिक्षित नारी के लिए रोजगार, घरेलू अथवा छोटे उद्योग-धंधे, शिक्षण एवं स्वास्थ संस्थानों में शिक्षिका, लाइब्रेरियन, नार्स, डॉक्टर आदि सेवाएँ उपलब्ध होने लगीं। जहाँ आवश्यक हो प्रशिक्षण सुविधाएँ भी दी जाने लगीं। भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालय श्रम, स्वास्थ्य, शिक्षा, गृह, कृषि, परिवार कल्याण, उद्योग आदि तथा योजना आयोग के सामन्तित प्रयास नारी की आर्थिक स्थिति को सुधारने की ओर उन्मुख हुए ताकि नारी वर्ग का चंद्रमुखी विकास हो सके और वर राष्ट्र की प्रमुख धारा में अपना योगदान कर सके।"[1] शिक्षा के ज़रिए आज नारी अपनी अलग

---

1. धर्मपाल - नारी : एक विवेचन - पृ. 11

अस्मिता की उपादेयता पर विचार करने लगी है। उच्च शिक्षा प्राप्त करके वह ऊँचे पदों पर नौकरी करने लगी है। इसके लिए सरकार स्त्रियों को अपनी तरफ से पूर्ण सहयोग भी दे रही है।

शिक्षा के ज़रिए आज की भारतीय नारी पर्दे के पीछे रहने वाली नारी का आवरण उतारकर अपने आपको पुरुषों के सामने स्थापित करने की हिम्मत जुटाने लगी है। मुसलमान लड़कियों को ज़्यादा शिक्षा न देकर जल्दी विवाह करवा दी जा रही है। पुरुष जानते हैं कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर नारी अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठा सकती है। वास्तव में लड़कियों को शिक्षा साक्षरता से दूर रखने का कारण हमारे पितृसत्तात्मक सांस्कृतिक मूल्य है। काम में माँ का हाथ बँटाना, डर की भावना, बच्चा पालना, मूलतः स्त्री को घर सम्भालने का उपकरण बनाना समाज चाहता है।

अनामिका का उपन्यास 'तिनका तिनके पास' में एक सेक्स वर्कर जिस्म बेचकर अपनी बेटी तारा को पढ़ाती है ताकि वह पढ़-लिख कर आगे बढ़ पाये, जिन्दगी में कुछ बन पाये "मरने के पहले माँ कह गयी थीं - बेटा, किसी तरह पढ़ लेना।' उसका बस चलता तो मुझे पहले ही दिन से होस्टल में रखकर पढ़ाती।"[1] तारा की माँ चाहती थी कि तारा पढ़े। कुछ बने। उसकी अपनी जिन्दगी बरबाद हो गयी। उसकी बेटी पढ़-लिखकर अच्छी अफसर बन जाये तो अपनी बेटी की ज़िन्दगी तो बच जाएगी।

---

1. अनामिका - तिनका तिनके पास - पृ. 48

'शेष कादम्बरी' में भी अलका सरावगी ने स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण किया है। इसकी मुख्य पात्र रूबी दी यानी रूबी गुप्ता है। वह कोलकत्ता शहर में एक सामाजिक कार्यकर्ता है। वह 'परामर्श' नामक संस्था का संचालन करती है। जीवन के दूसरे पहर में रूबी दी पूर्ण रूप से सक्रिय होती है। कभी-कभी वह अपने दफ्तर में आकर मायूस भी होती है, फिर भी वह अपने जीवन के उद्देश्य के प्रति प्रतिबद्ध है इसलिए सामाजिक कार्य उसकी दिनचर्या का हिस्सा बन जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यास की नायिका रूबी दी के सम्पर्क में अनेक पात्र आते हैं। सविता, सायरा, फराह, आभा जैन, पोती कादम्बरी ये सभी स्त्रियाँ समय और समाज की विषमताओं से पेरशान हैं। रूबी दी के संसर्ग में आनेवाली सभी स्त्रियों के अपने-अपने दुःख है जो कहीं न कहीं पुरुषवादी सोच से दंशित है। उपन्यास की सभी स्त्रियाँ दूसरे पुरुषों से नहीं बल्कि अपने घर-परिवार के पुरुषों, यहाँ तक पिता और भाई द्वारा निष्कासित और प्रताड़ित हैं। रूबी गुप्ता के संकट के मूल में उनका आइडेंटिटी क्राइसिस है। असल में अपने को प्रतिष्ठित करने के लिए भी वह सामाजिक कार्य में उतरती है, जिसे बाद में कादंबरी सही दिशा देती है।

उच्चवर्ग में भी स्त्री की स्थिति बेहतर नहीं है। इसे दिखाने के लिए सोलह साल पार कर के स्कूल जाती रूबी गुप्ता के पारिवारिक जीवन की झाँकियाँ उपन्यास प्रस्तुत करता है। इससे रूबी गुप्ता समझ लेती है कि अपनी अस्मिता को प्रतिष्ठित करने के लिए स्त्री को जोखिम उठानी है। इसके बारे में उसका निष्कर्ष इस प्रकार है कि - "औरत, तूने जब भी किसी कोने में पुरुष से अलग अपना कुछ

बनाया है, तो तुझे इसकी कीमत देनी पड़ी है।"[1] रूबी का पति सुधीर उत्पीड़क तो नहीं था फिर भी परिवार का माहोल अलग था।

'शेष कादम्बरी' में पारिवारिक हिंसा की शिकार युवतियाँ अधिक हैं। उपन्यास की मुख्य पात्र रूबी दी का जीवन भी इन समस्याओं से पूर्ण है। उपन्यास में ऐसे स्त्री पात्र भी है जो कि ज़िन्दगी को अपनी मर्जी से जीती है। उसकी नातिन कादम्बरी दिल्ली में रहती है, वह पत्रकारिता करती है। कादम्बरी अपनी नानी की प्रकृति से भिन्न है। वह कुछ एग्रेसिव है और नई दृष्टि से जीवन को देखती है। कादम्बरी दिल्ली में सहजीवन बिता रही है। वह अत्यन्त साहसी है कि उसे विवाह का बन्धन भी अनिवार्य नहीं लगता है। वह नानी से भी खुलकर बता देती है। स्त्री-विमर्श को यह व्याख्यायित करता है।

कुलमिलाकर निष्कर्ष के रूप में यह कहना उचित होगा कि संविधान के भीतर और बाहर स्त्री को घर-परिवार समाज देश-राष्ट्र में समान अधिकार दिलाने वाले नियम कानून तो है। उसका कार्यान्वयन भी लगभग सरकार की ओर से हो रहा है। फिर भी हमारे घर-परिवार समाज में पुरुष की प्रभुता प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में विद्यमान है। इसके कारणों में पुरुष वर्चस्ववादी संस्कृति का लंबा इतिहास है। सौकड़ों हज़ारों सालों से उसका आचरण समाप्त करता आ रहा है। स्त्री भी इस आचरण से मुक्त नहीं है।

❖❖❖

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी - पृ. 78

तीसरा अध्याय

अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी की कथा साहित्य में स्त्री प्रतिरोध का स्वर

तीसरा अध्याय
अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी की कथा साहित्य में स्त्री प्रतिरोध का स्वर

समकालीन स्त्री-लेखन स्त्री के अस्मिता-संकट को पहचानता है साथ ही वह परम्परा और रूढ़ियों के विरुद्ध सतर्कता से संघर्ष एवं प्रतिरोध कर रहा है। इस अध्याय में प्रतिरोध की स्थिति को अपनाने के लिए विवश स्त्री के बदलते रुख एवं रवैये को परखने की कोशिश है।

स्त्री चेतना की जागृति तथा प्रतिरोध एक दिन में घटी आकस्मिक घटना नहीं है। इसमें सदियों से चली आ रही संघर्ष की गाथा मौजूद है। प्रतिशोध की स्थिति वंचित होने के अहसास का तुरंत विस्फोट है और प्रतिरोध उसका संयमित एवं व्यवस्थित प्रयास है। इसके कई चरण हो सकते हैं, और रूप-भाव में विविधता भी हो सकती है। स्त्री का प्रतिरोध रूढ़ मानसिकता के खिलाफ उठ खड़े होने का सवाल है, उसका प्रतिरोधी तेवर शारीरिक और मानसिक शोषण के खिलाफ लड़ने की चेतना है।

आधुनिक भारतीय नारी के प्रतिरोध का विश्लेषण समकालीन परिवेश में स्त्री समाज की त्रासदी और विडम्बना, उसकी शोषित स्थिति, उसकी सामाजिक, आर्थिक पराधीनता, सदियों से चले आ रहे स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, सामंती मूल्य,

रूढ़िग्रस्त नैतिक मान्यतायें आदि से जुड़े प्रश्नों के संदर्भ में करना होगा और इस क्रम में अपने स्वत्व के आविष्कार और अस्तित्व की खोज स्त्री करती है। अपनी उपस्थिति को वे सामाजिक व्यवस्था से जोड़कर देखती है और व्यवस्था में अपनी स्थिति नियति को ढूँढती है। जहाँ वह अपनी स्वत्व सम्बन्धी मूल प्रश्नों से टकराती है वहाँ से शुरू होता है प्रतिवाद-प्रतिरोध एवं प्रतिक्रियाओं का एक सुदीर्घ पर्व।

स्वतन्त्रता पूर्व का महिला लेखन एक सीमित दायरे में बन्ध था। स्त्री के नैसर्गिक गुणों को उजागर कर उसके आदर्शात्मक स्वरूप को उकेरना ही उसका लक्ष्य था। इसी कारण उनकी लेखनी को कुछ पहचान नहीं मिली। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय जीवन तथा साहित्य संक्रमण के रास्ते से गुज़र रहे थे। क्योंकि आज़ादी के उपरान्त भारतीय सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिदृश्य बदलने लगे थे। तब सम्बन्धों में परिवर्तन आने लगे और दरारें उत्पन्न होने लगी थीं। इस परिस्थिति में वर्जनाओं, प्रतिबन्धों और विसंगतियों से जूझते जनसाधारण की भावनाओं को स्त्री रचनाकारों ने अपनी लेखनी का आधार बनाया। साथ ही साहित्य के क्षेत्र में वे पुरुषवर्चस्व को चुनौती देकर अपने हिस्से के दर्द और मुश्किलों को अभिव्यक्ति देती रही। आगे चलकर महिला रचनाकारों की संवेदना के दायरे में ज़बरदस्त परिवर्तन आ गया और उन्होंने आधुनिक नारी की पीड़ा, विद्रोह और भटकाव का चित्रण किया, साथ ही साथ उनमें ऐसी स्त्रियों का चित्रण हुआ जो शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने पर भी पुरुष के संस्कारजन्य कुण्ठाओं का शिकार होती है।

समकालीन लेखिकाओं में अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी ने आज के जीवन की परिवर्तनशीलता और नारी जीवन के परिवर्तित मूल्यों को अत्यन्त मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है और वे अपनी रचनाओं के जरिए स्त्री के भौतिक और आत्मिक अस्मिता के लिए संघर्ष करती हैं। साथ ही इनके लेखन विवाह-परिवार की संरचनागत बनावट से, नैतिक-सांस्कृतिक मूल्यों की संरचनाओं से प्रश्न करते हैं। अर्थात् इन लेखिकाओं की रचनाओं के केन्द्र में समसामयिक जीवन सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न रूप और आकार लेती स्त्री की अस्तित्व-चेतना उसका प्रतिरोध है। इसमें वह अपने वजूद को महसूस करती है। स्त्री चाहे किसी भी वर्ग की हो लगभग एक ही रूढ़ बन्द समाज से टकराते हुए उसका प्रतिरोध दर्ज होता है।

अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी ने अपनी रचनाओं में ऐसी स्त्री पात्रों को प्रमुखता दी है जो अपनी स्वतन्त्र सोच रखती है। वह स्त्री-पुरुष रिश्तों के उलझे पृष्ठों को खोलने का प्रयास करती है; स्त्री वर्ग पर थोपे गए सदियों से चले आते विभिन्न प्रकार के मिथकों व नैतिक धार्मिक मान्यताओं की असामयिकता, व्यर्थता व जड़ता का खुलासा करती है।

3.1 ऐतिहासिक भूमिका

इतिहास का सम्बन्ध अतीत से है। इतिहास में महिलाओं की भागीदारी का जो रूप दर्ज हुआ है उसका खुला चित्रण करना बहुत जरूरी है। क्योंकि वर्तमान सन्दर्भ में महिला सहभागिता के जितने भी सवाल उठते हैं उनका उत्तर इतिहास में

ही कहीं छिपा रहता है। सही तरीके से उसका खुलासा होने पर स्त्री आज़ादी का वास्तविक निचोड भी सामने आता है।

इतिहास में नारी जीवन की त्रासदी की साफ झलक दिखती है। अर्थात् इतिहास में प्राचीन काल से भारतीय नारी बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, अनमेल विवाह, कन्या शिशुओं की हत्या, सती प्रथा, जैसी अमानुषिक स्थितियों को कैसे सहती चली आयी इसका दारुण चित्र देखने को मिलता है। अलका प्रकाश के अनुसार "इतिहास साक्षी है कि नारी सत्ता को शीर्ष पर भले ही कभी अवस्थित नहीं रही हो लेकिन नींव का पथर वह ही रही हैं। अपने सेवा, त्याग एवं परोपकार के बल पर वह सत्ता का सहयोग करती रही। जिस प्रकार बड़े भवनों, किलों एवं पुलों के निर्माण के पहले नरबली दी जाती थी इसी प्रकार नारी पुरुष आगे बढ़ सके इसके लिए अपने स्वत्व का बलिदान करती रही।"[1] इस प्रकार इतिहास हमें अतीत का इतिवृत्त प्रदान कराता है और उसका सम्बन्ध आधुनिक काल तक का है। आधुनिकता से तात्पर्य एक अंधविश्वास से निकल कर दूसरे में प्रवेश करना नहीं बल्कि परम्पराओं तथा अंधविश्वासों को तोड़कर अपने बुद्धि और ज्ञान की सहायता से जीवन को आगे बढ़ाना है।

3.1.1 परंपरागत वर्जनाओं की चुनौतियाँ

समकालीन लेखिकाओं में अनामिका, अलका सरावगी, और महुआ माजी की रचनाओं में चित्रित स्त्रियाँ बार-बार अपने प्रचलित परम्परागत रूढ़ छवि को

---

1. अलका प्रकाश - नारी चेतना के आयाम - पृ. 23

तोड़ती हुई नज़र आती हैं। उनकी इन रचनाओं में बाधित अस्तित्व बोध और अस्मिता की पहचान एवं तलाश में स्त्री अस्तित्व को पुनः परिभाषित करने की कोशिश हुई है। इसके लिए इन लेखिकाओं ने प्रेम के परिवर्तित स्वरूप, बदलते सम्बन्ध और नए मानदण्डों और नए प्रतिमानों की अनेक रचनाएँ लिखीं और इसके ज़रिए नारी अस्तित्व की नई परिभाषाओं की खोज हुई। इससे उसकी जीवन पद्धति, उसके जीवन मूल्य एवं उसकी मनःस्थिति तेजी से बदली।

परम्परागत रूढ़ छवि के मिथ को यद्यपि भारतीय नारी तोड़ न पाई फिर भी आधुनिक नारी अपने अस्तित्व की नई परिभाषा की माँग अवश्य करने लगी। अर्थात् नए ढंग से परिभाषित करने की कोशिश वह स्वयं करने लगी। अपने अस्तित्व को पुनःगठित करने के उपक्रम में अपनी क्षमताओं को पहचान कर उसे और विकसित करने और फिर से नए सिरे से गठने की कोशिश में लगी हुई स्त्री का परिवर्तित स्वरूप स्त्री अस्तित्व सम्बन्धी परम्परागत परिकल्पनाओं का परिवर्तन करता हुआ नजर आता है। साथ ही जिस पूँजीवादी उपभोक्ता व्यवस्था में स्त्री के नग्न शरीर को मात्र उपभोग की वस्तु बनाकर उत्तराधुनिक व्यवस्था में नाम दिए जा रहे हैं उस तथाकथित भद्र व्यवस्था से सीधे टकराता है। परम्परागत रूढ़ छवियाँ-मातृत्व, पत्नित्व, गृहस्थ में बँटी वह भूमिकाएँ हैं जो नारी के लिए आचरण की कसौटियाँ निर्धारित करती है। समाज द्वारा निर्धारित भूमिकाओं से बाहर आकर स्वतंत्र रूप से नारी के अस्तित्व को परिभाषित करन आसान नहीं है। त्याग, ममता, स्नेह, करुणा, समर्पण, श्रृंगार, कोमलता जैसे पुरुष प्रिय गुणों के परिधानों

को ओढ़े हुए स्त्री अस्तित्व की परम्परागत परिकल्पना स्त्री की रूढ़ छवि को ही हमारे सामने उपस्थित करती है और स्त्री का प्रतिरोध इन रूढ़ छवियों के खिलाफ है।

परंपरा का संबन्ध रूढ़ियों से होता है। परंपरा की आगे की कड़ी ही कालक्रम की दृष्टि से आधुनिकता है। परंपरा में जड़ता की संभावनाएँ अधिक हैं, वहाँ तर्क कम होता है, रूढ़ियाँ अधिक होती हैं। आधुनिकता के मूल में तर्क एवं विवेक है, तब वहाँ रूढ़ियों के लिए जगह नहीं होगी। तर्क एवं विवेक को पार करने में समर्थ परम्परा आधुनिकता को मज़बूत कर सकता है, इस तरह दोनों के बीच संबन्ध संभव है। अलका प्रकाश के अनुसार "स्त्री के दृष्टिकोण से जो परम्पराएँ उसे प्राप्त है, आज उसे यह स्वतंत्रता है कि वह उनका मूल्यांकन करें। आज की नारी दहेज प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा जैसी परम्पराओं से अपने को सहमत नहीं कर पाती। ये किसी समय विशेष में भले ही मूल्य रहे हों इसकी परम्परा रही हो, लेकिन समय बदला है, समय के साथ-साथ व्यक्ति भी। ऐसे में नारी भी परंपरा व मूल्यों को परखने का उपक्रम करने लगी है यह नारी की प्रतिक्रिया नहीं है बल्कि उसके चेतना सम्पन्न होते जाने का प्रमाण है।"[1] यदि परंपरा आगे चलकर रूढ़ियों में तबदील हो जाती है तो नारी को परंपरागत छवी को तोड़ना चाहिए। क्योंकि तब वे उसकी उन्नति के खिलाफ हो जाती है। यानी नारी उन्हीं परंपराओं का ही विरोध करती है जो उसके विकास में बाधा उत्पन्न करती है। लेकिन व्यक्ति, समाज और संस्कृति के संदर्भ में परंपराओं के महत्व को भी नकारा नहीं जा सकता। नारी ने

---

1. अलका प्रकाश - नारी चेतना के आयाम - पृ. 71

कभी भी पूर्ण रूप से परम्पराओं एवं मूल्यों की अवहेलना नहीं की है बल्कि अपने हित के लिए उसमें परिवर्तन लाना ही चाहा है। परंपरागत वर्जनाओं के प्रति विद्रोह करने वाले उपन्यासों में अनामिका का उपन्यास 'दस द्वारे का पिंजरा' काफी चर्चित रहा। एक समय था जब स्त्रियों को शिक्षा देना, उन्हें पढ़ाना लिखाना बुरा समझा जाता था। अतः अशिक्षा और अंधविश्वासों में जकड़ी अधिकांश नारी पुरुषों की दासी हो गई थी। समय परिवर्तनशील है आज शिक्षा के ज़रिए स्त्री अपनी इस स्थिति से अवगत हो गई। अनामिका ने अपने इस उपन्यास में भी स्त्री शिक्षा पर ज़ोर दिया है। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में भी महाराष्ट्र के गंगामूल आश्रम में स्त्री को शिक्षा देना घोर अपराध का काम था। रमाबाई के पिता श्री आनंत शास्त्री एक विद्वान ब्राह्मण तथा समाज सुधारक थे। उन्होंने इसका विरोध किया और नौ वर्षिय लड़की से विवाह करके उसे पढ़ाने का निर्णय लिया। एक बार रमाबाई 'देवी सूक्त' रहस्य के बारे में सभा में बोलने लगती है तो पंडितों को यह कार्य अच्छा नहीं लगता है। वे इसके विरोध में खड़े हो जाते हैं तो आनंत शास्त्री कहते हैं कि - "इतनी असहिष्णुता। ऐसी संकीर्णता। वाणी के वर्चस्व की साधना व्यर्थ है यदि स्त्रियों और अन्य अनादृत समूहों को बेलने की भी स्वाधीनता न हो। वाणी की अधिष्ठात्री देवी स्वयं भी तो स्त्री काया में है।"[1] पुराने ज़माने में भरी सभा में स्त्रियों का बोलना, उसे शिक्षा प्राप्त कराना धिक्कार माना जाता था। अर्थात् यहाँ पर परंपरागत वर्जनाओं के प्रति आनंत शास्त्री की विद्रोही भावना उभर आती है।

---

1. अनामिका - दस द्वारे का पिंजरा - पृ. 25

परंपरागत वर्जनाओं के प्रति विरोध करने वाला ऐसा ही एक और प्रसंग इस उपन्यास में है। जब पंडिता रमाबाई की माँ की मृत्यु हो जाती है तब रमाबाई सोच रही थी कि दो लोग मिलकर माँ की अर्थी कैसे ढोएँगे। माँ की अर्थी का एक कन्धा वह स्वयं उठाने का प्रयास करती तो कुछ लोग इसके विरोध में आये। रमाबाई उन लोगों को मुँह तोड़ जवाब देती है। अपने हक को जताती हुई वह कहती है कि - "मैं भी माँ की वैसी ही सन्तान हूँ जैसे श्रीधर है। स्त्री की काया में हूँ तो क्या हर जिम्मेदारी निभा सकती हूँ।"[1] यहाँ रमाबाई समाज में प्रचलित विभिन्न मान्यताओं के प्रति विद्रोह प्रकट करती है। रमाबाई रूढ़ियों को तोड़कर अपनी अस्मिता को बनाए रखते हुए जीना चाहती है। इसलिए उसे अपने हक के लिए दूसरों से लडना पडता है, जूझना पडता है। वह बराबरी चाहती है। अपनी इयत्ता का ध्वंस करने वाली सामाजिक गतिविधियों के खिलाफ वह लड़ती है।

'कलि-कथा वाया बाइपास' अलका सरावगी का पहला उपन्यास है जिससे उन्हें अनुपम सफलता प्राप्त हुई और हिन्दी के कुछ श्रेष्ठ उपन्यासकारों की श्रेणी में स्थान मिला। उपन्यास में लगभग डेढ़ सौ साल के मारवाडी समाज का चित्रण प्रस्तुत है साथ ही इसमें राष्ट्रीय एवं सामाजिक उत्थान और पतन भी रेखांकित है। उपन्यास के केन्द्र में नायक के रूप में किशोरबाबू और उनका मारवाड़ी समाज है। छह पीढ़ियों की यह कथा किशोरबाबू के जीवन की तीन अवस्थाओं को प्रस्तुत करती है। उपन्यास में आज़ादी के आंदोलन काल का अर्थात् स्वाधीनतापूर्ण भारत तथा स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक

---

1. अनामिका - दस द्वारे का पिंजरा - पृ. 48

परिवेश प्रस्तुत किया गया है। इस अर्थ में यह उपन्यास पूर्ण रूप से नारी पर केन्द्रित उपन्यास नहीं है फिर भी नारी समस्याओं पर और उनके प्रतिरोध पर भी थोड़ा बहुत प्रकाश डाला है। "इसमें भले ही मारवाडी समाज का माहौल दिखाई देता हो किंतु इसके किशोरबाबू भारतीय पुरुष की मानसिकता के ही प्रतिनिधि पात्र हैं। उनका नारी विषयक दृष्टिकोण दकियानूसी कहना होगा। लेखिका ने किशोर बाबू के बाइपास के जरिए उनके विचारों का बाइपास होना ज़रूरी समझा है। नारी शिक्षा की महत्ता, विधवा विवाह की आवश्यकता और एकाधिकारशाही की मानसिकता को छोड़कर समन्वय की वृत्ति तथा नारी स्वतंत्रता के बिना सामाजिक उन्नयन संभव नहीं यही विचार प्रस्तुत रचना का केन्द्रीय विचार है।"[1] परंपरावादी मारवाडी समाज में पुरुषों को जितनी स्वतंत्रता प्राप्त होती है उतनी स्त्रियों को कदापि नहीं।

इस उपन्यास में स्त्रियों को बहुत दबाकर निष्क्रिय रूप में प्रस्तुत किया है। उनका संघर्ष उबर नहीं पाया है जबकि उपन्यास में 1946 से सन् 1996 और इक्कीसवीं सदि तक की कथा को बुना गया है। किशोर बाबू के मारवाडी परिवार पूर्णतया इसके नियंत्रण में था। पत्नी तथा सन्तानें उसकी आज्ञा का पालन करने को मजबूर थी। अपनी इजाजत के बिना घर की किसी भी स्त्री को कहीं आने-जाने की अनुमति नहीं थी। ऐसे मारवाड़ी समाज में माँ, विधवा भाभी, पत्नी की सामाजिक स्थिति कैसी है, इसे उपन्यास सही मायने में प्रस्तुत करता है। घर में तीन स्त्रियों के बीच अकेला मर्द 'किशोर बाबू' किशोर बाबू की पत्नी ने भी पाँच लड़कियों को और एक लड़के को जन्म दिया।

---

1. डॉ. अर्जुन चव्हाण - समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष (हिन्दी तथा मराथी उपन्यासों के तुलनात्मक विमर्श के संदर्भ में) पृ. 148

किशोर बाबू ने अपने पाँचों बेटियों को बड़े सकती से पाला। उपन्यास में एक जगह किशोर की बेटी अपने बाबू के नारी सम्बन्धी विचारों से तंग आकर अपनी माँ और दादी से अपनी असहमति व्यक्त करती है। लेकिन उत्तर न मिलने पर वह अपनी बड़ी माँ से पूछती है - "बड़ी माँ, तुम बताओ कि पापा इस तरह क्यों सोचते हैं लड़कियों के बारे में? हम क्यों नहीं खेल सकते बगल के मकान की लड़कियों से? हम क्यों नहीं खड़े हो सकते बरामदे में? हम क्यों नहीं जा सकते अपनी सहेलियों के घर? हम क्यों कैद है पिंजरे में बंद चिड़ियों की तरह? तुम क्यों कैद हो बड़ी माँ? तुमने क्या पाया ऐसा जीवन जीकर? किसके लिए जीवन जिया तुमने ऐसा? तुम क्यों सहती हो हर बात पर पापा की मर्जी?" तो इस प्रश्न के उत्तर में बड़ी माँ कहती है - "बेटी, औरतों के लिए जीवन ऐसा ही है। उन्हें तो सबकुछ सहकर जीना है। हमेशा दबकर रहना है।"[1] यानी औरतों को बचपन से ही अपने परिवार में यह सीख दी जाती है कि वह हमेशा अपने बाप, भाई और पति के नियंत्रण में रहे और अपनी ज़बान चुप कर दब कर जिये। यहाँ किशोर बाबू की छोटी बेटी ऐसी परंपरागत सोच का विरोध करती है।

बाइपास सर्जरी के बाद किशोर बाबू की हालत बिल्कुल बदल जाती है तब किशोरबाबू सोचता है - "कैसी जिंदगी है हमारे घरों में औरतों की किशोर कई बार सोचता है। सारे दिन घर में बंद रहती है। कभी बाहर निकलना हुआ, तो जरीदार भारी ओढ़नी ओढ़कर। गरदन तक घूंथट डालकर। अमोलक कहता है कि

---

1. अलका सरावगी - कलिकथा वाया बाईपास - पृ. 58
2. वही - पृ. 70

हाथरस में उसके ननिहाल में मकानों की छतें एक दूसरे सटी हुई है। "वहाँ औरतों को एक दूसरे के घर जाने के लिए ओढ़नी नहीं लेनी पड़ती वे छत-ही छत से दूर तक कई-कई घरों में आ जा सकती हैं। उनकी छतें ही उनके लिए सड़कें हैं। उन्हें नीचे की दूकान से कोई सामान मंगवान होता है तो वे ऊपर एक तल्ले से साड़ी लटकाकर नीचे की दूकानदार को आवाज दे देती है। वह उसी साड़ी में सामान बोध देता है जिसे वे ऊपर खींच लेती हैं। महीनों-महीनों तक औरतें घर के बाहर सड़क पर कदम नहीं रखतीं।"[1] पुराने मारवाड़ी समाज में परंपरागत रूढ़ियों के बन्धनों की भरमार थीं लेकिन आज नारी अपना प्रतिरोध इन सब के खिलाफ व्यक्त कर रही है। किशोर बाबू की नारी दृष्टि गाँधी मुताबिक है। किशोर बाबू जब गाँधी (आमोलक) से दूर होता है तब वह अधिक कट्टर-परम्परावादी नज़र आता है। जब वह अमोलक से एकमेक होने का प्रयत्न करता दिखाई देता है, तब नारी के प्रति उसकी दृष्टि उदार हो जाती है।

उपन्यास में एक ज़गह किशोर बाबू सोचता है कि "जब शहर में सड़क पर चलते हुए औरतों को पेशाब आता होगा, तो वे कहाँ जाती होंगी।" इस तरह लेखिका ने बड़ी गंभीरता के साथ औरतों की समस्याओं को इस उपन्यास के ज़रिए पाठकों के सामने लाने की कोशिश की है, साथ ही उनके छोटे-छोटे प्रतिरोधों को भी।

अलका सरावगी ने 2001 में प्रकाशित अपने दूसरे उपन्यास 'शेष कादम्बरी' में स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं का और उनके प्रतिरोधों का चित्रण किया है।

---

1. अलका सरावगी - कलिकथा वाया बाईपास - पृ. 11

उपन्यास की मुख्य पात्रा रूबी गुप्ता कलकत्ता शहर में समाज सेवा करती है। वह 'परामर्श' नामक संस्था का संचालन करती है। जीवन के अन्तिम चरण में रूबी दी सामाजिक दृष्टि से पूर्ण रूप से सक्रिय है। कभी-कभी वह अपने दफ्तर में आकर मायूस भी होती है, फिर भी वह अपने उद्देश्य के प्रति प्रतिबद्ध है। इसलिए समाज सेवा उसकी दिनाचर्या का हिस्सा है। "उपन्यास की नायिका सत्तर साल की रूबी दी का आख्यान स्त्री विमर्श का एक नया पक्ष है जो स्वानुभूति और सहानुभूति के द्वन्द्व से अपने को बचा नहीं पाया है। यह रचना निश्चित ही सहानुभूति का परिणाम है पर इसका आस्वाद स्वानुभूति का आभास देता है। अलका सरावगी की कुशलता यही है कि बिना भोगे हुए जीवन का यथार्थ इस जादुई तकनीक के साथ उन्होंने पेश किया है कि वह विश्वसनीयता का आभास तो देता है, पर उसमें संदेह और संभावनाओं के कई-कई छेद है।"[1] रूबी गुप्ता को अपने जीवन में अनेक विषमताओं का सामना करना पड़ता है वह चाहे अपने ही घर में हो या फिर उसके ससुराल में। बचपन में तेरह साल की उम्र में जब उसे मालूम होता है कि उसके माँ-बाप उसके अपने नहीं है तो वह आइडेंटिटी क्राइसिस की शिकार हो जाती है। तब से वह अपने होने के अर्थ को तलाशने लगती है। अपने ससुराल में भी उसे कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शिक्षित होने के बावजूद रूबी अपने ससुराल में भी मानसिक संतुष्टि नहीं पा सकी। उसके पिता की हैसियत जैसा ससुराल नहीं था। कमतर आर्थिक-सामाजिक हैसियत के होते हुए भी रूबी को

---

1. डॉ. शोभा वेरेकर - हिन्दी उपन्यास नारी विमर्श - पृ. 75

सास, जिठानी का उत्पीड़न सहना पड़ा। मन मुताबिक दहेज न मिलने के कारण उसे यह एहसास कराया गया कि "सतपीढ़िया शाह की लड़की कोई काम सहीं नहीं कर सकती। उसमें कई दोष निकाले गये थे एक, पढ़ी-लिखी होना, दो, औरों की तुलना में ज़्यादा पैसेवाली होना। उत्पीडन के कारण ही गर्भावस्था में वे एनीमिक हो जाती है। उसे पौष्टिक आहार नहीं दिया जाता है। सब कुछ सहकर भी रूबी अंत में अपने पैरों में खड़ी होती है। उसमें आत्मविश्वास आ जाता है। स्त्रियों पर 'घर' तोड़ने का प्रायः आरोप लगाया जाता है। सच यह है कि स्त्रियाँ एक सीमा तक ही सह पाती है। सजग और सतर्क स्त्रियाँ। रूबी दी ऐसी ही स्त्री थी। अतः उन्होंने ससुराल से अलग रहने का फैसला किया। उत्तरोत्तर वह अलग और अकेली होती गयी। पति की मृत्यु हो जाती है और दोनों बेटियाँ विदेश जा बसती है। उपन्यास में एक जगह उसकी नातीन कादम्बरी उससे कहती है कि - "जानती है रूबी दी, यदि मैं आपके जितनी बड़ी हुई, तो ठीक आपके जैसी होना चाहूँगी। एकदम स्वतंन्त्र। कोई भावुकता नहीं। बैलेंस्ड।"[1] यानी जिन्दगी अपने लिए अत्यंत जरूरी लगे तो जाहिर है, स्त्रियों में आत्मविश्वास आया है। इसी आत्मविश्वास से भरा है रूबी दी का व्यक्तित्व। उसमें सब कुछ सहने और जिन्दगी में आगे बढ़ने का आत्मविश्वास आ जाता है।

उपन्यास में रूबी दी के परामर्श नामक संस्था में कई स्त्रियाँ आती हैं जैसे सविता, सायरा, फराह आदि ये सभी स्त्रियाँ समय और समाज की ज्यादतियों तथा

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी - पृ. 152

विषमताओं से हर स्तर पर आक्रांत है, रूबी दी उन्हें सहारा देती है और उन्हें जीने की सलाह देती है। उपन्यास में रूबी की नातिन कादम्बरी दिल्ली में रहती है वह पत्रकारिता के पेशे से जुडी हुई है। वह एग्रेसिव है और नई चर्चा में विश्वास रखती है। कादम्बरी के इरादे, लेखन, महत्वाकांक्षा, दिल्ली में किराये पर किसी मर्द पार्टनर के साथ रहने का साहस और अपनी नानी से भी खरी शैली में पेश आना ये सभी उसे दूसरे की सोच से भिन्न करती है। वह कहती है - "ओह नो। गौतम कोई पत्रकार थोड़े ही है, जो सिर्फ लिखकर छुट्टी पा ले। वह तो सोशल जस्टिस के लिए न्याय के लिए पार्लियमेंट के सामने घटना दे रहा है। उसका सोशल वर्क में विश्वास नहीं, नानी, सोशल जस्टिस में है।"[1] यहाँ कादम्बरी की सोच है कि वह और गौतम एक साथ क्यों नहीं रह सकते। वे दोनों ही स्त्री उत्थान के लिए काम करना चाहते हैं। यहाँ लोगों की पुरानी सोच पर कादम्बरी प्रश्न चिह्न लगाती है।

3.1.2 पुरुष शत्रु नहीं

नर और नारी के पारस्परिक संबन्ध से ही सृष्टि का विकास संभव है। जिस प्रकार नारी के व्यक्तित्व के विकास के लिए पुरुष की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, उसी प्रकार पुरुष के व्यक्तित्व के विकास के लिए नारी भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और नर-नारी की पूर्णता आपसी मिलन से संभव होती है परस्पर अलग रहने में नहीं। डॉ. उषा यादव के अनुसार "परिवार में यदि पति-पत्नि दोनों ही बाहर कार्यशील है, तो घर की सुचारु व्यवस्था को लेकर अनेक

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी - पृ. 35

समस्याएँ उठती हैं। पति यदि समझदार है, पत्नी को घर के कामों में सहयोग देता है, तब तो स्त्री दोहरे उत्तरदायित्व को सरलता से झेल ले जाती है, अन्यथा तनाव और कार्याधिक्य की थकान से वह टूटने लगती है।"[1] कहने का तात्पर्य यह है कि नर-नारी के बीच का भेद-भाव सभ्य समाज के लिए योग्य नहीं। दांपत्य जीवन यदि स्वस्थ और सहज न हो तो पारिवारिक जीवन बिखर जाएगा।

लेखिका अनामिका ने सन् 1983 में प्रकाशित अपना उपन्यास 'पर कौन सुनेगा' में अपने पारिवारिक जीवन से पीड़ित और शोषित नारी का चित्रण किया है। उपन्यास की नायिका 'मीरा' है। मीरा की माँ है 'रुनु'। मीरा के पिता लाल रुनु जब मीरा को पेट में थी तभी उन्हें छोडकर चले गये थे। कान्त, लाल और रुनु दोनों का दोस्त था। वह एक क्रांतिकारी भी था। कान्त अपनी पत्नी उमा और अपने बच्चों से बहुत प्यार करता है। खास कर अपनी बेटी सलोनी से - "कान्त सलोनी के पिता ही नहीं थे, दोस्त और हमराज भी थे, बल्कि उससे ज़्यादा भी कुछ, मगर क्या यह उन्हें स्वयं नहीं मालूम। कई छोटी-बड़ी घटनाएँ थीं - व्याख्या के परे। बहुत सोचने पर यही लगता था कि यदि स्वयं से स्वयं तक की कोई मंजिल होती है तो बचपन से ही जिस आधारभूत, सहज अनावृत्त 'मैं' की तलाश में वे जाने कहाँ-कहाँ भटकते फिरे सलोनी उसकी मंजिल थी।.... आत्मबीक्षा का माध्यम, एक तुनुक स बंकिम सेतु जो अपने ही भीलर पल रहे दो ध्रुवों के बीच की दूही पाट दे एक ध्रुवों के बीच वह जो दूर छूट गया और एक वह जो आने वाला है, मगर जो आकर भी

---

1. अनामिका - पर कौन सुनेगा - पृ. 36

कभी नहीं आएगा।" यहाँ एक ओर लेखिका ने अपनी बेटी से बहुत प्यार करने वाले, उसे अपनी लेखनी की प्रेरणा बनाने वाले पिता का चित्रण दिया है तो दूसरी ओर गर्भावस्था में ही माँ और बच्चे को छोड़ कर भाग जाने वाले पिता का ज़िक्र भी किया है। यह दिखाने के लिए कि सभी पुरुष स्त्रियों का शत्रु नहीं है।

कान्त की बेटी सलोनी की मृत्यु हो जाती है फिर भी कान्त मीरा को अपनी बेटी समान प्यार करता है। जब कान्त को यह मालूम पड़ता है कि मीरा से उसके ससुराल वाले बहुत ही बुरी तरह का सलूक करते हैं तो यह सुनकर उन्हें बहुत बुरा लगता है - "कान्त का सिर घूम गया, कान पर हाथ रख लिए, और वहीं, उसी क्षण निश्चय किया कि अब चाहे जो हो, रुनु के बाद मीरा उन्हीं के साथ रहेगी, वापस इस नर्क में उसे नहीं भेजना है। शायद मीरा को देख लेने-भर के लिए रुनू के प्राण अटके थे।"[1] यहाँ कान्त का मीरा के प्रति जो व्यवहार है इससे ज़ाहिर होता है कि कान्त के मन में मीरा के लिए कितना प्यार और सहानुभूति है। कान्त जब अनाथ मीरा को अपने घर लाता है तो कान्त की पत्नी उमा को छोड़ घर के अन्य सदस्यों को अच्छा नहीं लगता। वे लोग कान्त से झगडा करते हैं, मीरा से बातें तक नहीं करते। किसी भी तरह कान्त उन्हें समझाने लगता है लेकिन वे लोग मानते नहीं। कान्त को उनके व्यवहार से दुःख पहुँचता है। लेकिन ज़्यादा दुख तब पहुँचता है जब कान्त का आत्ममित्र देव इस कारण उनसे बातें करना छोड़ देता है। तब कान्त मीरा के लिए अपने मित्र से भी झगड़ा करता है वह कहता है कि -

---

1. अनामिका - पर कौन सुनेगा - पृ. 105

"इतने लम्बे भाषण का काँपते गले से कान्त बस इतना ही उत्तर दे पाए - "तुम्हारी भी दृष्टि इतनी थोथी हो सकती है, देव, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। मीरा मेरी प्रेरणा है, मेरी पूजा, मेरी मुक्ति का माध्यम। उसकी आँखों में मुझे उस पार के दीप जलते दीखे हैं - इस तरह मेरी तपस्या को कीचड़ में मत घसीटो, कम से कम तुम मत घसीटो। दुनिया में औरत-मर्द का सिर्फ एक ही रिश्ता नहीं होता - आदम का वह जूठा सेब आखिर कब तक हमारे सम्बन्धों में सड़ांघ पैदा करता रहेगा? कमजोरियाँ जगती तो हैं, पर इन पर विजय पायी जा सकती है, इन्हें उदात्त किया जा सकता है - क्या तुम भी नहीं समझते?"[1] कान्त मीरा के लिए सब से झगड़ते हैं यहाँ तक कि अपने दोस्तों से भी। मीरा उसकी अपनी बेटी न होने पर भी कान्त मीरा को अपनी पुत्री समान ही प्यार करता है। वास्तव में कान्त को मीरा को अपने घर लाने की और उसकी देख भाल करने की कोई ज़रूरत नहीं थी लेकिन इनसानिया के नाते वह मीरा को अपने घर में पनाह देता है।

कान्त की पत्नी उमा का भाई डॉ. सत्यजित भी उपन्यास के अन्त तक आते-आते मीरा से अपनी सहानुभूति जताता है और उससे शादी करने के लिए भी तैयार हो जाता है। वह कहता है - "यदि कुछ अनुचित हो तो माफ करना, मीरा, पर मेरी एक विनती है.....। इतने दिन साथ रहकर जितना तुम्हें जाना है, उस आधार पर इतना तो कह सकता हूँ कि मुझे तुमसे विवाह कर लेने में कोई आपत्ति नहीं होगी.... तुम्हें सहारा चाहिए। मैं दूँगा तुम्हें सहारा, किसी तरह का कोई दुःख

---

1. अनामिका - पर कौन सुनेगा - पृ. 110

नहीं होगा तुम्हें मेरे साथ....."[1] उपन्यास में उमा का भाई डॉ. सत्यजित मीरा की अवस्था जानकर उस पर तरस खाता है। यहाँ तक कि उससे शादी करने के लिए भी तैयार हो जाता है। लेकिन मीरा उसे स्वीकारती नहीं। उपन्यास में, कान्त, टुन्नन और डॉ. सत्यजित जैसे अच्छे पुरुष पात्रों के ज़रिए यह तथ्य स्थापित करना चाहा है कि ज्यादातर पुरुष नारी के शत्रु नहीं होते। बल्कि समाज में ऐसे पुरुष भी होते हैं जो स्त्रियों से इज्जत, सहानुभूति और प्यार करना जानते हैं।

पितृसत्तात्मक समाज में यदि कोई पुरुष स्त्री को थोड़ा अधिकार और प्यार देना चाहता है तो उस पुरुष को भी समाज का दंश झेलना पड़ता है। अनामिका के उपन्यासों में एक ओर पितृसत्ता के वर्चस्व को चुनौती देनेवाली स्त्रियों की कथा है तो दूसरी ओर ऐसे पुरुष भी है जो स्त्री को पर्याप्त सम्मान और अधिकार देने के पक्षधर है।

'दस द्वारे का पिंजरा' नामक अनामिका के उपन्यास में पंडिता रमाबाई का पति सदाव्रत समाबाई के कदम से कदम मिलाकर उसका साथ निभाता है। वह उसकी प्रगति के रास्ते का काँटा नहीं बनता। सदाव्रत हमेशा रमाबाई के साथ देता था - "सदाव्रत बाबू की शान्द, धीरोदात्त छाह भी धूप से गोटे हाथ - पाँवों पर सुन्दर सी मेहंदी रचे रखती हैं। चोटी भी वे ही कर देते हैं। पीठ दबा देते हैं। इतना दुलार-मन भी एक हल्का नशा ही है।.... कभी-कभी लोगों या पुस्तकों को लेकर हल्की बक-झक भी हो जाती है, पर बात की गिरह बाँधकर बैठने की मनोवृत्ति न रमा की

---

1. अनामिका - पर कौन सुनेगा - पृ. 121

है, न उसकी इसलिए जीवन सुगम है। अक्सर शाम के वक्त दोनों कंधा से कंधा जोड़े कुछ-कुछ पढ़ते हैं, पढ़ते-पढ़ते रमाबाई के मन में आता है कि काश, कोई कम्बल ओढ़ा दे तो पता नहीं किस अंतः प्रेरणा से सदाव्रत बाबू उठते हैं और उसे गर्दन तक कम्बल ओढ़ा देते हैं।"[1] यानी दाम्पत्य सम्बन्ध मुख्यतया पति-पत्नी की प्रकृति, आपसी समझ बूझ तथा पारिवारिक पर निर्भर होता है। इस उपन्यास में रमाबाई और सदाव्रत अपने दांपत्य जीवन को बखूबी से निभाते हैं।

इस उपन्यास का दूसरा खण्ड वेश्या ढेलाबाई की कथा से संबद्ध है। बाबू हलवन्त सहाय के लिए ढेलाबाई को महेन्द्र मिसिर उठा ले आया था। बाबू हल्वन्त सहाय को आखिर यह मालूम हो गया कि महेन्दर मिसिर अद्‌भुत गायक - गीतकार है और ढेला अप्सराधर्मी नृत्यांगना है तो ढेला को घर के चार दीवारी में बाबू हलवन्त सहाय बन्ध कर देता है। अपने इस किये कराये पर बाद में उन्हें अफसोस भी होता है जो कि उनकी इन बातों से हमें पता चलता है - "मैंने पहली बार महसूस किया कि ढेला की देह से एक अद्‌भुत ज्योत छिटक रही है। कलकत्ता से बम्बई तक क्या जाने कितनी नृत्यंकनाएँ देखी होंगी पर ऐसा नाच नहीं देखा। जिसको घर की मुर्गी बना रखा था वो तो कलँगीवाला मोर था। मोर को पिंजरे में बंद रखे रहने का पाप भी लगेगा यह सोचकर मैं सिहर गया।"[2] यहाँ बाबू हलवन्त सहाय को जब यह मालूम होता है कि ढेला अप्सरा धर्मी नृत्यांगना है। उसे अपने घर के चार दीवारों के बाँधकर वह बहुत बडी भूल कर रहा है तो बाबू हलवन्त सहाय को

---

1. अनामिका - दस द्वारे का पिंजरा - पृ. 75
2. वही - पृ. 218

इससे दुःख होता है। और वे ढेला को अपने बन्धन से मुक्त कर देता है। जिससे यह सिद्ध होता है कि ज्यादतर पुरुष नारी के शत्रु नहीं होते।

3.1.3 स्वत्वान्वेषण अकेले में नहीं

नारी की जब शिक्षा संपन्न होने लगी तो उसकी अवधारणाएँ बदलने लगीं। वह अपने स्वत्व को पहचानने लगी। शिक्षा के ज़रिए वह समाज में व्यक्त असंगतियों, विषमताओं एवं अत्याचारों की पहचान कर अपनी हैसियत पर सोचने के लिए सक्षम बन गयी। आज नारी जागृत है। वह अंधविश्वासों पर आँखें मूँद नहीं लेती। रूढ़िवाद वह अब सह नहीं सकती। आज वह सोच समझकर अपना जीवन जी रही है। महादेवी वर्मा के अनुसार "समाज में पूर्ण स्वतंत्र तो कोई हो ही नहीं सकता; क्योंकि सापेक्षता ही सामाजिक सम्बन्ध का मूल है। प्रत्येक व्यक्ति उसी मात्रा में दूसरे पर निर्भर है, जिस मात्रा में दूसरा उसकी अपेक्षा रखता है। पुरुष-स्त्री भी इसी अर्थ में अपने विकास के लिए एक दूसरे के सहयोग की अपेक्षा रखते हैं, इसमें सन्देह नहीं। कठिनाई तब उत्पन्न होती है जब यह सापेक्ष भाव एक की ओर अधिक घट या बढ़ जाता है।"[1] यानी स्त्री और पुरुष एक दूसरे पर समान ढंग से निर्भर रहते हैं तो उनके बीच कभी भी किसी भी प्रकार की दरार नहीं रहेगी।

स्वत्वबोध प्राप्त नारी कभी भी अपने परिवार का विघटन नहीं चाहती। अगर कहीं ऐसी स्थिति आ जाती है तो वह उसको रोकने की कोशिश करती है। स्वत्वबोध ही मनुष्य को आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। 'दस द्वारे का पींजरा'

---

1. महादेवी वर्मा - श्रृंखला की कड़ियाँ - पृ. 103

उपन्यास में पंडिता रमाबाई में सबसे पहले अपना स्वत्वबोध तभी जागृत हो उठता है जब वह अपना धर्म परिवर्तन करती है - "मुक्ति भी स्त्रीलिंग ही तो है। कभी अकेली नहीं मिलती। हरदम वह झुण्ड में ही हँसती-बोलती चलती है। येरियों का झुण्डा हो या जैन साध्वियों, चिड़ियों और स्त्रियों का यह बृहत्तर सखा-भाव रमाबाई को हमेशा ही आकर्षित करता।"[1] यानी परिवारवाले या समाज जैसा भी हो सभी जंजीरों को तोड़कर आगे बढ़ने का रास्ता स्वत्वबोध से ही प्राप्त होता है।

बेसहारा स्त्रियों को इकट्ठा करके मुक्ति मिशन चलाने की योजना रमाबाई के मन में उस समय उमड़ रही थी। जस्टिस रानडे के घर उनकी पत्नी को अँगरेजी पढ़ाने के लिए मिस हारफोर्ड आती थीं जिससे पंडिता रमाबाई को इंगलैण्ड के 'सिस्टर्स होम' की जानकारी मिली। हारफोर्ड ने ही रमाबाई को फादर गोरे से भी मिलवाया था। वह रमाबाई को यह कह कर आश्वासन दिलाती है कि जाति बहिष्कृत होने का दर्द वह भी समझती है। जस्टिस रानडे और उसकी पत्नी, रमाबाई के आग्रह करने पर उसकी बेटी को इंग्लैण्ड भेजने का पूरा इन्तज़ाम करता है। और वहाँ के विशेष स्कूल होस्टल में दाखिल भी करता है। इससे यह मालूम होता है कि स्वत्वान्वेषण जो है वह कभी भी अकेले में हासिल नहीं होता। स्वत्वबोध ही मनुष्य को जिन्दगी में आगे बढ़ने की हिम्मत देता है।

3.1.4 शिक्षा की भूमिका

स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता के पीछे शिक्षा का बड़ा योगदान रहा है। अज्ञान और रूढ़ियों के अन्धेरे को शिक्षा ही दूर कर सकती है। शिक्षा के अभाव

---

1. अनामिका - दस द्वारे का पिंजरा - पृ. 93

में नारी का जीवन घर की काली दीवारों और सामाजिक विरोध के दायरे में बंद हो जाता है तो शिक्षा के जरिए नारी अपनी हैसियत से अवगत हो गई। "स्त्री सशक्तीकरण की प्रक्रिया में शिक्षा एक महत्वपूर्ण औज़ार है। इसके बिना स्त्री न तो अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो सकती है। न ही उनके लिए बढ़ने का साहस ही जुटा सकती है। शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों के लिए संगठन के महत्व को भी समझाना जरूरी है। संगठित होकर ही वे अपनी लड़ाई समग्र रूप से लड़ सकती है और समाज का चेहरा बदलने में सफल हो सकती है।"[1] यह सही है कि शिक्षा ही नारी को समाज में आगे बढ़ाकर सफलता प्राप्त करने की ताकत उपलब्ध कराती है। शिक्षा के बल पर नारी अपने ऊपर होने वाले शोषण के खिलाफ आवाज़ उठा सकती है और समाज में शिक्षित-प्रशिक्षित स्त्रियों को ही आर्थिक स्वायत्तता प्राप्त होती है। अशिक्षित महिलाएँ, अपने अधिकारों के प्रति सजग नहीं होती। यहाँ तक कि उन्हें अपने भले-बुरे का ज्ञान भी नहीं रहता। भारतीय नारी को आगे बढ़ना है तो उसे उच्च शिक्षा प्राप्त करनी होगी। स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं आर्थिक स्वतंत्रता ने ही स्त्री के प्रतिरोध को संभव बनाया है।

शिक्षा आत्म सजगता का कारगर साधन है। आत्मसजगता व्यक्ति को नज़रिया प्रदान करती है। शिक्षित नारी की आत्मनिर्भरता उसे स्नेह, मान, पद, प्रतिष्ठा सभी देती है। जब तक विदूषी और शिक्षित स्त्रियों की संख्या अधिक न होगी तब तक सर्वसाधारण स्त्रियों को न तो सुसंगति से कुछ लाभ प्राप्त हो सकता है और न पढ़ने-लिखने वाली स्त्रियाँ उन्हें मिल सकती हैं।

---

1. गीता दूबे - मुद्दों की गहन पड़ताल - विजय बहादुर सिंह (सं) वागर्थ 173 दिसम्बर 2009

अनामिका के उपन्यास 'मन कृष्ण, मन अर्जुन' की नायिका तरु पढ़ी-लिखी है। शिक्षित होने के नाते वह अपने विवाह के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करती है। उसका विचार है कि - "मर्द का साया औरतों के लिए बहुत मनहूस होता है। स्वतन्त्र व्यक्तित्व पनपने ही नहीं देते। अब जिन औरतों को कोटर की छाया में ही सुख मिलता हो..... वे करें शादी, जिनके पास अपनी विशिष्ट प्रतिभा है, आर्थिक स्वावलम्बन है, मन बाँधे रहने को तरह-तरह के उदात्त काम हैं..... वे अकेली भी रहीं तो कौन क्या बिगाड़ लेगा? पढ़ने-लिखने से सम्मानपूर्वक अकेले जीने का गट्स तो आ ही जाता है। कम से कम में तो लावण्यदी की तरह टूटने से रही।"[1] शिक्षित नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग है। यहाँ तक कि उसमें अकेले जीवन बिताने का भी धैर्य आ जाता है। शिक्षित नारी न केवल अपने बारे में चिन्तित है बल्कि अपने परिवेश, समुदाय, और देश के बारे में भी सोचने लगती है और उसमें अपने तथा समाज का जीवन-स्तर ऊँचा उठाने की आकांक्षा बलवती होती है।

'दस द्वारे का पिंजरा' उपन्यास की नायिका रमाबाई 'पंडिता' है। अपने पिता श्री अनंत शास्त्री से ही रमाबाई को शिक्षा प्राप्त हुई थी। अनंत शास्त्री आँध्र ने गंगामूल आश्रम को बड़ी मुश्किल से पौराणिक अध्ययन केन्द्र के रूप में विकसित किया था। अपनी पत्नी लक्ष्मीबाई और पुत्री रमाबाई को शास्त्र पढ़ाने के कसूर में गाँव के ब्राह्मणों ने उनके निर्णय का विरोध किया और उन्हें बिरादरी से

---

1. अनामिका - मनकृष्णा, मन अर्जुन - पृ. 70

बहिष्कृत कर दिया था। लेकिन अनंत शास्त्री स्त्री-शिक्षा का स्पष्ट समर्थन करता था। "जिह्वा पर तो सरस्वती का वास था ही। पूरा परिवार विद्या का उपासक। दूर-दूर तक इनकी ओजपूर्ण वाणी और सरस धर्मवार्त्ताओं की चर्चा फैलने लगी.... एक आश्रम सा विकसित हो गया।"[1] इससे ज़ाहिर होता है कि इस उपन्यास में शिक्षा के महत्व पर ज़ोर दिया गया है। उपन्यास की नायिका शिक्षित नारी होने के कारण ही स्त्रियों के ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ सशक्त ढंग से आवाज़ उठा सकी है।

अनामिका ने इस उपन्यास में शिक्षित रमाबाई के माध्यम से आत्मसजग नारी के विद्रोही व्यक्तित्व को बुलन्द कर दिया है। वह अपनी इच्छा और आकांक्षा के अनुसार जीना चाहती है। अपने रास्ते की बाधाओं को तोड़ते हुए वह आगे बढ़ती है। पण्डिता होने के कारण वह किसी भी लक्ष्मण रेखा का अतिक्रमण करने के लिए तैयार हो जाती है। यह विद्रोह दर असल पढ़ी-लिखी आधुनिक नारी का विद्रोह है। समाज के अन्धविश्वासों रूढ़ियों एवं अत्याचारों के खिलाफ विद्रोह।

स्त्री चेतना का लक्ष्य स्त्री को दास्यभाव से मुक्ति दिलाना है। इसकी पहली शर्त है स्त्री को शिक्षा के ज़रिए दास्य भाव से मुक्ति। डॉ. राजरानी शर्मा के अनुसार - "नारी के पारिवारिक और सामाजिक जीवन की विषमताओं को लेकर समाज सुधारकों ने जो प्रयत्न किये उनमें नारी शिक्षा को लगभग सभी ने महत्ता दी। इसके मूल में उनका उद्देश्य यही था कि युग-युग से निरक्षर फलतः अशक्त नारी नये ढंग

---

1. डॉ. राजरानी शर्मा - हिन्दी उपन्यासों में रूढ़िमुक्त नारी - पृ. 36

की शिक्षा पाकर अपनी स्थिति सुधार सके और यदि उसके सामने कभी कोई ऐसी स्थिति आ जाये कि वह सब ओर से आधार हीन हो जाये तो उस शिक्षा के कारण अपने पैरों पर खड़ी हो सके।"[1] यानी शिक्षा ही नारी को अपने पैरों पर खडे होकर कुछ कर दिखाने की ताकत प्रदान करती है। अशिक्षित नारी के मन में हमेशा एक प्रकार का डर रहता है वह घर के चार दीवारीं में बन्ध रहती है। अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी इन तीनों लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के ज़रिए यह प्रमाणित करने की कोशिश की है कि शिक्षा ही नारी को अपनी दबी, सहमी और डरी हालत से बारह ला सकता है। शिक्षा भौतिक और मानसिक उत्थान में भी सहायक होती है। महिलाओं के लिए शिक्षा का और भी अधिक महत्व है, क्योंकि अशिक्षित रहने के कारण वे अपने प्रति होने वाले भेद-भाव का प्रतिरोध नहीं कर सकती।

3.1.5 स्त्री पुरुष संबन्ध

स्त्री-पुरुष परिवार रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। उनमें से एक के टूट जाने से जिस प्रकार गाड़ी आगे नहीं बढ़ती उसी प्रकार स्त्री-पुरुष के संबन्ध के बिगड़ने से परिवार का सर्वनाश मुमकिन है। डॉ. राजरानी शर्म के अनुसार "स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों की समस्या का एक रूप पति और प्रेमी के बीच नारी का मानसिक संघर्ष है। नारी अब परम्पराओं एवं जड़ सांस्कृतिक मान्यताओं से कटकर एक नयी भावभूमि पर अपने व्यक्तित्व को निर्मित करने की चेष्टा कर रही है जिसमें

---

1. डॉ. राजरानी शर्मा - हिन्दी उपन्यासों में रूढ़िमुक्त नारी - पृ. 63

पाश्चात्य दृष्टिकोण का प्रभाव तो है ही, साथ ही अपने प्रति विद्रोह करने का भाव भी शामिल है। यह नारी एक ओर तो बाह्य विस्तार से उदासीन होकर अपनी निजता की ओर अग्रसर हो रही थी तो दूसरी ओर अपनी इस निजता को गतिशील करते हुए व्यापक सामाजिक सन्दर्भों से अपने को जोड़ना भी चाहती थी। इस दुहरे दायित्व से विरोधाभास की एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि जिसने नारी को अनिश्चयात्मकता की सीमाओं में बाँध दिया।"[1] नारी अब परम्पराओं और रूढ़ियों को तोड़कर अपनी विद्रोही मानसिकता से आगे बढ़ रही है। और वह सामाजिक सम्बन्धों से अलग होना भी नहीं चाहती।

स्त्री-पुरुष संबन्ध की जटिलताओं को और नारी मुक्ति की बेहद क्रान्तिकारी तस्वीरों को भी पेश करने में अनामिका सफल सिद्ध हुई है। समाज के सभी क्षेत्रों में नारी को जो कुछ भी सहना पड़ा है उन सबको उन्होंने अपने उपन्यासों के ज़रिए व्यक्त किया है। उपन्यास 'मन कृष्णा मन अर्जुन' में वसुधा और शिखा सहेलियाँ हैं वे दोनों पत्राचार के ज़रिए एक दूसरे से अपने-अपने मन की बातें अभिव्यक्त करते हैं। वसुधा शिखा से कहती है - "औरत और मर्द में सचमुच अंतर मूलभूत है न। एक ही परिस्थिति की कैसी दो तरह की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। पुरुष जब सुलगता है तो आस पास सब-कुछ जला देता है.... अपने दुर्दम्य पौरुष के आवेग में, उसका एक अलग ही आतंक होता है, लोग उस आतंक का भी सम्मान ही करते हैं.... आँधेले था न एक। स्त्री सुलग नहीं पाती - सारी ज्वालाएँ पीकर हमेशा हमेशा के

---

1. अनामिका - मन कृष्ण, मन अर्जुन - पृ. 82

लिए बुझ जाना, बुझकर चुपचाप किसी कोने में इस तरह बिखर जाना कि राख रौंदकर गुजरने वाले को भी किसी बिखराव, किसी आग का एहसास नहीं हो.... यही तो स्त्री की नियति जिसे झूठी गरिमा के नाम पर वर्षों से वह झेलती रही है, झेलती रहेगी.... स्वभाव से लाचार। लाख आन्दोलन आएँ, जाए.... मूल वृत्तियों भी कहीं बदलती हैं। लोग लाख स्त्री-पुरुष की समानता की बात करें.... आँधेलों के जिस उद्दाम पैशन का इतना सम्मान होता है, ठीक उसी पैशन की वशीभूत, चरित्र के दोहरे पन के संदेह की चकाचौंध में यदि डेस्डिमोना आँधेलों की हत्या कर डालती तो क्या यह परम्परा-जर्जर समाज उसे गले उतार पाता? सरक नहीं उठते उसके संस्कार कि कोमलता की देवी ने यह क्या किया? कोमलता की देवी एक अच्छा सुनसुना है जिसकी झंकार में, हमारे सारे आक्रोश, साही टीस घोंट कर आराम से खुला दिए जाते हैं।" स्त्री पुरुष के बीच सहज व्यवहार और एक दूसरे के प्रति सहयोग की भावना होनी चाहिए। केवल यही भाव ही आधुनिक समाज की समस्या का निवारण कर सकता है। हर एक व्यक्ति की अपनी अस्मिता होनी है। वह कभी भी छोटी नहीं होती। यह समाज में अपनी इच्छा के मुताबिक जीवन जीने का हक हर किसी को होता है।

3.1.6 पत्नीत्व और नारीत्व

नर और नारी एक दूसरे से अभिन्न है। विवाह के ज़रिए वे एक दूसरे से मिल जाते हैं और नारी पुरुष की अर्धांगिनी बन जाती है। परिवार के पालन करने में नारी का दायित्व अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वह त्याग और क्षमा की मूर्ति है।

दाम्पत्य जीवन को बनाये रखने में उसका बहुत बड़ा हाथ होता है। कामकाजी महिला अपने दफ़्तर के काम के साथ-साथ घर के काम भी निपटाती है। पति ऐसी पत्नी को चाहता है जो उसके हुकूमत के मुताबिक जिये। अनामिका के उपन्यास 'अवान्तर कथा' में विमल तरु से शादी करना चाहता है वह तरु से कहता है - "एक बात बताऊँ, मेरे मन में बैठा है कि बहू का मतलब होता है हू-ब-हू गुड़िया, परछाई, प्रेम की तस्वीर, खानदानी आबरू के ताख पर शान से बिठाई भव्य, विक्टोरियन तस्वीर जिसमें तक्काशीदार स्टूल पर अंगूर के गुच्छों और पालतू कबूतरों से घिरी, रेशमी गाउन और भूरी उदास आँखों वाली लड़की सहमी-सी बैठी होती है। हंस रही है? फ्यूडल लगता है न, पर पता नहीं बचपन से यही छवि मेरी आँखों में क्यों बसी है।"[1] परम्परागत पुरुष मन में शुरू से ही नारी के प्रति यह संकल्प होता है कि वह पुरुष के हाँ में हाँ मिलाकर उसके साथ स्नेह और ममता की मूर्ति बनकर जिए मृगनयनी, मृदुहासिनी, मृदुभाषिणी आदि-आदि।

'दस द्वारे का पिंजरा' की नायिका पंड़िता रमाबाई अपने घर-गृहस्थी का खास ध्यान रखती है। "घर-गृहस्थी में रमाबाई की दिनचर्या उलझी रहती है। रससिद्धि दाम्पत्य और सजग मातृत्व रात गँवाई सोथ के दिवस गँवाया खाय का भाव जगने नहीं देते। वैयक्तिक जीवन की पूर्णता सार्वजनिक जीवन से विच्छिन्न कर गई हो - ऐसी भी बात नहीं। चिन्तन-मनन चलता रहता है। तरह-तरह की किताबें, तरह-तरह के लोग सार्वजनिक जीवन की हालचलों से बेखबर रहते हैं। हर शाम

---

1. अनामिका - दस द्वारे का पिंजरा - पृ. 74

बैठक गुलजार होती है।" रमाबाई का जीवन क्रम ऐसा रहा था कि खाना बनाने का उसे ठीक प्रशिक्षण नहीं मिला था। लेकिन फिर भी वह खाना बनाने में अपने ससुर की मदद करती थी। दाम्पत्य जीवन को बनाये रखने में नारी का योग ही सबसे बड़ा होता है। वह अपने मायके को छोड़ने पर भी ससुराल में अपने सास, ससुर पति और बच्चों का खास ध्यान रखती है। उसका अस्तित्वबोध परिवार से हटकर नहीं, उसी के साथ मिलकर होता है।

3.1.7 देह के परे नारी की अस्मिता

स्त्री का शरीर ही उसका सबसे बड़ा दुश्मन है। वह जहाँ भी जाती है अपने शरीर के कारण वह दूसरों के आकर्षण का पात्र बन जाती है। अगर वह ज़्यादा मोटी है तो लोगों की दृष्टि उसके शरीर के मोटापे पर पड़ती है और वह दुबली हो तब भी पड़ती है। "शरीर के सम्बन्ध में भी स्त्री के विचार ऐसे ही द्वयार्थक रहते हैं। शरीर को वह बोझ मानती है। मासिक धर्म तथा प्रजन्न क्रिया को शांतिपूर्वक स्वीकार करते हुए भी उसकी शरीर आनंद का स्रोत न रहकर एक असीम यंत्रणा का ऐसा माध्यम बन जाता है, जिससे नित्य नए संकट पैदा होते रहते हैं।"[1] स्त्री और पुरुष की शारीरिक संरचना अलग है, प्रकृति अलग है, शारीरिक बल अलग है। इस स्तर पर पुरुष का शरीर थोड़ा आगे हैं, और उसी के आधार पर स्त्री शोषण चल रहा है। प्राचीन काल से इस तरह नारी देह का शोषण होता आ रहा है बलात्कार, पति द्वारा पत्नी की मार-पीट आदि पुरुष की विकृत मानसिकता के

---

1. प्रभा खेतान - स्त्री उपेक्षिता - पृ. 316

ज़रिए। स्त्री को उसके शरीर मात्र के आधार पर न देखते हुए उसे उसके मन, बुद्धि और आत्मा के ज़रिए पहचानना चाहिए।

स्त्री की अधिकांश समस्याएँ उसकी देह से ही उत्पन्न होती हैं। अपने शरीर के प्रति वह अतिरिक्त सावधानी रखती है। यह भी सच है कि समाज व घर में स्त्री शोषण याने शारीरिक शोषण हो रहा है। चाहे वह अपने ही घर में क्यों न हो वह बलात्कार की शिकार हो जाती है। अर्थात् अपने शरीर के कारण वह घर-बाहर कहीं भी सुरक्षित नहीं है। इससे मुक्त होने के लिए पुरुष के समान बनना नहीं, समाज एवं पुरुष की मानसिकता को बदलना है।

औरत को मात्र उसके शरीर के आधार पर देखना कहीं भी उचित नहीं। किसी भी स्त्री का आकलन मात्र उसके शरीर से नहीं हो सकता। 'मन कृष्ण मन अर्जुन' उपन्यास में तरु देह के परे अपनी अस्मिता को बयान करते हुए कहती है - "त्याग की देवी मैं कभी नहीं हो सकती। अपनी इच्छा, अनिच्छा, ध्येय, पसंद की ओर पूरी तरह सचेत एक जीती-जागती शख्सियत हूँ। कपड़े की गुड़िया नहीं। मुझसे पूरा सम्मान वही पा सकता है जो मेरा पूरा सम्मान करें.... मेरा, मेरे दिल-दिमाग, मेरे पूरे व्यक्तित्व का कायल हो। नौकरी की कोई चिन्ता नहीं, मैं दिलवा दूँगी, इतनी काबलियत मुझमें हैं.... किसी से किसी चीज में कम नहीं हूँ, जो आए अपनी मूँछ का बहशी रोब नहीं गाँव में छोड़कर आए। दोस्त बनने आए, स्वामी नहीं। बाहर ही नहीं, घर के भी काम मिल..... जुलकर करने का अभ्यासी हो। आदमी हो, भेड़िया नहीं, न ही शेर, वरना मैं भी रिंग... मास्टर होना जानती हूँ।

अम्मा की तरह चुपचाप घुटना मुझसे नहीं होगा.... साफ बात।"[1] पुरुष प्रधान समाज में जो स्त्री पुरुष के सामने हाथ नहीं फैलाती उसे अपने घर में भी अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। यह जमाना स्त्री को हमेशा घर में रहने वाली माँ, दादी, बुआ के रूप में ही देखना पसन्द करता है। पुरुष समाज की इस तरह की सोच को बदलने की ओर लेखिका इशारा करती हैं। आज स्त्री अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को चुप-चाप सहने को तैयार नहीं है वे इसका विरोध करती है। 'दस द्वारे का पिंजरा' उपन्यास में पंडिता रमाबाई की माँ अपनी बेटी के भविष्य को लेकर चिन्तित है। "रमाबाई मन ही मन यह सोचकर हँसती कि माँ तो सिर्फ नाम की लक्ष्मीबाई है। एक वहाँ झाँसी में लक्ष्मीबाई जो हुई है उनसे कभी माँ मिलती तो उनके जीवन में भी स्त्री-सुलभ भय के कुछ सूत्र ढूँढ ही निकालती। देह क्या सचमुच ही औरतों की गर्दन में लटका हुआ ढोला है? मार-पीट, सती दहन और बलात्कार लगातार झेलती हुई स्त्री कब पूर्ण व्यक्ति की तरह निःशंक रह सकेगी?"[1] यहाँ पर रमाबाई का यह प्रश्न पूरे समाज से है? आज नारी अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना के लिए संघर्ष कर रही है। उसने पुरानी रूढ़ियों पर प्रहार करना शुरू किया है और अपने व्यक्तित्व के दरवाजे खटखटाना शुरू किया है। कोई भी नहीं चाहेगी कि बिना उसकी इज़ाजत के उसकी देह का घिंचन करें।

उपन्यास के दूसरे खण्ड में ढेलाबाई हलवन्त सहाय से कहती है कि "जबर्दस्ती मेरी देह पर तो हो सकती है, रूह पर काबू इस जन्म में तुम नहीं

---

1. अनामिका - दस द्वारे का पिंजरा - पृ. 47

पाओगे। बिना रूह की मुर्दा देह चाहिए तो ले लो। पूरी ढेला बाई नहीं मिलेगी।'' यह ढेलाबाई के मन के प्रतिशोध की भावना है। यानी पुरुष नारी को प्रेम के माध्यम से ही हासिल कर सकता है जबरदस्ती से नहीं। अगर पुरुष नारी के साथ जबरदस्ती करता है तो वह बलात्कार ही है। कोई भी स्त्री वेश्यावृत्ति में पदार्पण स्वेच्छा से नहीं करती बल्कि हालात उसे उस रास्ते पर आने को मजबूर कर देता है और एक बार वहाँ पहुँचने के बाद उसका वहाँ से निकलना मुशकिल भी हो जाता है।

3.1.8 कहानियों में प्रतिरोध का स्वर

अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी इन तीनों लेखिकाओं की कहानियों में सामाजिक विसंगतियों, कुरीतियों, आधुनिकता के मोहपाश में जकड़े मानव की रुग्ण मानसिकता आदि का जीवंत चित्रण मिलता है। आर्थिक दृष्टि से बनते-बिगड़ते, टूटते-बिखरते सम्बन्धों के चित्रण में इन्होंने अपनी गहरी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। इनकी कहानियों के नारी पात्र कहीं समस्या की शिकार बनी है, तो कहीं कुण्ठाग्रस्त मानसिक वृत्तियों से आहत हो गई है। अकेलेपन के शाप को ढोनेवाली नारियाँ एक ओर हैं तो असीम आज़ादी की तलाश करने वाली आधुनिकताएँ दूसरी ओर। ये लेखिकाएँ अपनी कहानियों के जरिए निम्नवर्ग के पात्रों की जिन्दगी के समूचे दायरे में घुसकर अध्ययन करती नजर आती हैं।

अलका सरावगी की कहानी 'टिफिन' में सारिका की माँ जब यह कहती है कि लड़कियों को खाना बनाना सीखना चाहिए। तब सारिका के मन में भी उसे

खाना बनाने सीख लेना चाहिए ऐसा विचार आता है। वह अपनी दादी से कहती है कि - "मैं न खाना बनाना जानती हूँ न और कुछ। माँ शायद ठीक ही मुझे डाँटती रहती है। मुझे वही सब सीखना चाहिए। किताबों में सिर घुसाए रखने से क्या फायदा? दादी ने मुस्कुराकर स्निग्ध स्वर से कहा - "किसने कहा तुमको कि तुम्हें कुछ और नहीं करना है? तुम बुद्धिमान हो। ज़माना बदल रहा है। बहुत कुछ कर सकती हो। घर का काम तो एक नौकर भी कर लेता है। वह सब सीखने में क्या तुम्हें बहुत समय लगेगा? सारिका दादी से लिपट गई ओह दादी पापा-मम्मी तुम्हारी तरह क्यों नहीं सोच सकते।"[1] यहाँ दादी अपनी पोती को यह सीख देती है कि शिक्षा ही सब कुछ है। अगर ज़िन्दगी में कुछ करना और बनना चाहती हो तो वह शिक्षा से ही संभव हो सकता है। यहाँ दादी के मन में शिक्षित न होने पर अफसोस है। इसलिए वह अपनी पोती को शिक्षा के महत्व के बारे में अनुभव के आधार पर समझाती है। इसके ज़रिए दादी स्त्री मन के प्रतिरोध का बयान देती है।

'खिज़ाब' कहानी की 'दमयन्ती' अपने बूढ़ापे के उम्र में भी अकेली ही रहती थी। वह अपने लड़के बहू के नीचे दबकर रहने को तैयार नहीं थी। अपनी इच्छा के मुताबिक वह जीती थी। दमयन्ती जी को अस्पताल ऑपरेशन के लिए ले जाने एक लड़की आती है वह दमयन्ती के बारे में सचती है कि - "दमयन्ती जी ने प्रेम और स्वतन्त्रता में स्वतन्त्र रहने का चुनाव कर लिया है। अपने इर्द-गिर्द देखकर उसे कई बार महसूस होता था कि प्रेम सारी सहूलियतों और सुरक्षाएँ भले

---

1. अलका सरावगी - कहानी की तलाश में - टिफिन - पृ. 37

ही दे सकता है, पर स्वतन्त्रता छीन लेता है। सम्बन्धों की निकटता में सुरक्षा तो ज़रूर है, पर उतनी ही घुटन भी है।"[1] 'ख़िजाब' कहानी की दमयन्ती अपनी ज़िन्दगी अपनी मर्जी के मुताबिक खुद जीकर अपने लड़के और बहू के प्रति उसके मन की प्रतिरोध को साफ ज़ाहिर करती है। वह अकेले रहने में भी खुश है।

'महँगी किताब' कहानी में सुशीला जी अपने दफ्तर में काम करने वाली एक लड़की से दफ्तर के अलावा घर के काम भी कराती थी। यहाँ सुशीला स्त्री होने पर भी स्त्री का शोषण करती है, उस पर अपना अधिकार जताती है।

कहानी के अंत तक आते-आते उस लड़की को सुशला जी के मन की ऐब का पता चलता है और वह अपना विरोध व्यक्त करते हुए कहती है - "नहीं होना मुझे औरों के जैसा! मैं जैसी थी, वैसी ही ठीक थी।"[2] इस तरह अपने मन के अक्रोश को वह व्यक्त करती है। इस प्रकार अलका सरावगी की कहानियों में चित्रित स्त्रियाँ अपने-अपने परिवेश को ईमानदारी से प्रस्तुत करती है।

3.1.9 पारिवारिक शोषण का प्रतिरोध

परिवार समाज की प्राथमिक संस्थाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्था है। पारिवारिक जीवन में भावना और भावनात्मक सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। अतः जो लोग इन भावनात्मक सम्बन्धों से सन्तुष्ट नहीं होते वे उत्तरदायित्व से मुँह मोड़कर परिवार से संबन्ध तोड़ लेते हैं। पारिवारिक विघटन का कारण केवल

---

1. अलका सरावगी - कहानी की तलाश में - पृ. 78
2. वही - पृ. 89

पति-पत्नी के बीच का तनाव ही नहीं बल्कि माता-पिता, पिता-पुत्र, सास-बहू आदि के बीच का भी हेतु बनते हैं।

पति-पत्नी के बीच के संबन्ध और समझौता ही परिवार को संगठित करने का मुख्य आधार है। यही आधार जब टूटने लगता है तो विघटन शुरू होता है। अलगाव, तलाक शारीरिक हिंसा से परिवार बिल्कुल टूटकर बिखर जाता है। पति-पत्नी के स्वभाव में विरोध, व्यक्तिगत व्यवहार, आदतों तथा रुचियों में एकत्व न होना भी विघटन के कारण है। 'पर कौन सुनेगा' उपन्यास की नायिका मीरा पर उसके ससुराल वाले बहुत अत्याचार करते हैं। एक बार मीरा के ससुरालवाले सब शादी की दावत को निकलते वक्त उसकी ननंद उससे गहने पूछती है तो मीरा दे देती है। लेकिन कुछ ही देर में उसकी सास आकर मीरा को खरी खोटी सुनाती है। वह कहती है कि - "क्या यहाँ वियोगिनी बनकर चलने का इरादा है? दस लोग देखेंगे तो यही कहेंगे न कि बहू के सारे गहने-कपड़े छीनकर उसे गृहस्थी में झोंक डाला अरे झूठी सहानुभूति बटोरने के तेरे संस्कार कब जाएँगे? जाओ, अपने ये नखरे उसी मुहल्ले में छोड़ आओ, यह शरीफों की बस्ती है। फिर मेरी बेटियाँ क्या सोने के पत्तरों के इन्हीं देहाती गहनों की मुहताज है? इसके लिए मैंने नये-नये फैशन के वजनी गहने बनवा रखे हैं। छिनाल की बेटी, ये सँभाल अपने टोटने।"[1] यह सुनकर मीरा क्रुद्ध होती है। मीरा सब कुछ बर्दाश्त कर सकती थी लेकिन अपनी माँ के बारे में ऐसी बुरी बातें सुनकर वह भड़क जाती है और अपने गहने

---

1. अनामिका - पर कौन सुनेगा - पृ. 101

और सामान बाँधकर अपने ससुराल से मायका चली जाती है इस तरह मीरा अपनी प्रतिक्रिया ज़ाहिर करती है।

'अवान्तर कथा' उपन्यास का सतीश सिन्हा बहुत ही घटिया किस्म का आदमी था। वह अपनी पत्नी दीक्षा को मारता था और यहाँ तक कि दूसरों के बारे में भी बहुत ही गन्धी-गन्धी बातें कहता था - "अरे, वो राबड़ी भौजी! जयप्रकाश आन्दोलन के समय लालू जेल में था। हम मिलने गए तो बोला भउजी के देखिह। भउजी से मिलने गए तीन-चार सौ रुपए लेकर तो देखा तो गोबर पाथ रही थी है - और क्या देखा देखा साड़ी है झिलिंग और पेटिकोट साइड से हाथ-भर फटा है। बेचारी काम-काज की धुन में थी - कुछ हवास ही नहीं था, लेकिन हम लजा गए कि उस फाफड़ से तो उसका सब ऐक्टिविटी दिखाई दे रहा है।"[1] सतीश सिन्हा के इस तरह की बातों से यह बात साफ-साफ ज़ाहिर हो जाता है कि वह कितना घटिया है इस कारण तरु उससे तंग आकर अपना ससुराल छोड़ कर नन्ना के घर आ जाती है नन्ना का पति दीनानाथ भी कुछ खास अच्छा नहीं था। दीनानाथ जज था और नन्ना डॉक्टर। सबको न्याय दिलाना दीनानाथ का काम था, पर अपने वैयक्तिक जीवन का न्याय-अन्याय करने में वह असमर्थ रहा। नन्ना उसे भी छोड़ देती है और अपना एक अलग घर बसाती है। वहाँ वह अनाथ एवं पति द्वारा उपेक्षित स्त्रियों, उनके बच्चे बूढे आदि लोगों को सहारा देती है इस प्रकार नन्ना भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व खड़ा करती है। उपन्यास में नन्ना, तरु, मीरा.... आदि को प्रतिरोध की दक्षता शिक्षित होने के कारण ही हासिल हुई है।

---

1. अनामिका - पर कौन सुनेगा - पृ. 13

निष्कर्ष के तौर पर यह कहना अधिक उचित होगा कि अपनी अन्दरूनी संवेदना, वर्चस्व और स्वतन्त्रता पर डाली गई अदृश्य बेड़ियों के खिलाफ उठी स्त्रियों की आवाज़ ही स्त्री प्रतिरोध का सार है। स्त्री की पहचान का संकट और अपनी पहचान के लिए किए गए प्रतिरोध समकालीन स्त्री लेखन का प्रमुख मुद्दा है। समकालीन लेखिकाओं में अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी ने अपनी रचनाओं द्वारा यह याद दिलाती रही कि नारी चेतना की असली लड़ाई स्त्री के स्वभाव, संस्कार व प्रकृति के विषय में अपने भीतर घर किए हुए सामन्ती मनोवृत्तियों एवं समीकरणों से है। इन लेखिकाओं ने ज़्यादातर स्त्री की प्रचलित तीन छवियों को व्यक्त किया है पहले में स्त्री सदियों से चली आ रही मानसिक, दैहिक, आर्थिक शोषण और अत्याचारों को बन्द मुँह सहती रही तो दूसरे में वह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनकर तुरन्त निर्णय लेने लगी और तीसरे रूप में वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए परम्पराओं को चुनौती देकर उनके विरुद्ध आवाज़ उठाने लगी। स्त्री घर की दहलीज को पार करते हुए प्रतिरोध करने लगी। समकालीन लेखिकाओं में अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी ने ऐसे कई स्त्री-पात्रों की सृष्टि की जो अपने प्रतिरोध को सशक्त रूप में दर्ज करती हैं।

चौथा अध्याय

अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिदृश्य

चौथा अध्याय
अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिदृश्य

4.1 ऐतिहासिक परिदृश्य

ऐतिहासिक घटनाक्रम अतीत से जोड़ने का कार्य संपन्न करता है। इतिहास घटनाओं का प्रवक्ता है इसलिए वह अतीत की घटनाओं का चित्रण करता है। इसमें घटनाओं का लेखा-जोखा ही नहीं बल्कि विविध विचारों का संघर्ष और संस्कृति के समग्र रूप की प्रस्तुति भी होती है। इतिहास अतीत को जीवंत रखने का एक मात्र साधन है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "शाब्दिक दृष्टि से 'इतिहास' का अर्थ है - 'ऐसा ही था' या 'ऐसा ही हुआ'। इनसे दो बातें स्पष्ट हैं - एक तो यह कि इतिहास का संबन्ध अतीत से है, दूसरा यह कि उसके अन्तर्गत केवल वास्तविक या यथार्थ घटनाओं का समावेश किये जाते हैं। उसमें उन सभी लिखित या मौखिक वृत्तों को सम्मिलित किया जाता है जिनका सम्बन्ध अतीत की यथार्थ परिस्थितियों व घटनाओं से हैं और साथ ही उनका सम्बन्ध केवल 'प्रसिद्ध घटनाओं' से ही नहीं, अपितु उन घटनाओं से भी हैं जो प्रसिद्ध न होते हुए भी यथार्थ में घटित हुई हों।"[1]

---

1. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 21

यानी इतिहास भूतकाल की स्मृति को सदा प्रकाशित करता रहता है। वह अतीत के माध्यम से वर्तमान की समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयत्न करता है और इतिहासबोध अतीत की समझदारी जो वर्तमान के तमाम अन्तर्विरोधों, विसंगतियों आदि की छानबीन करके भविष्य के संभावित परिणामों के लिए संकेत छोड़ देता है।

इतिहास अतीत के अज्ञात जीवन को सामने लाता है। इसी अर्थ में इतिहास को विज्ञान कहा गया। कभी-कभी भ्रमवश घटनाओं के लिखित विवरण को इतिहास मान लिया जाता है। वास्तविकता यह है कि लिखित विवरण नहीं बल्कि स्वयं घटनाएँ इतिहास हैं।

साहित्य अतीत के जीवन को चित्रित करते समय इतिहास पर आश्रित रहता है। इतिहास साहित्य का अंग है लेकिन यह भी सत्य है कि उपन्यासों, काव्यों और कहानियों में जो ऐतिहासिक तथ्य होते हैं वे पूर्ण रूप से विशुद्ध ऐतिहासिक नहीं होते। उनमें बहुत कुछ कल्पना सम्बन्धी विकृति का समावेश भी होता है। आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक ऐसी नारी निरंतर दिखाई देती है जो अपनी अस्मिता की खोज में यहाँ-वहाँ भटकती फिरती है। वह अपने परिवार में, समाज में तथा व्यक्ति के रूप में स्वतंत्रता से जीने का हक माँगती है। 'दस द्वारे का पिंजरा' नामक अनामिका का यह उपन्यास इतिहास से वर्तमान और वर्तमान से इतिहास की ओर छलांग मारता दिखायी देता है। यह उपन्यास ऐतिहासिक है, लेकिन पूर्ण रूप से नहीं। इसमें कहीं-कहीं लेखिका ने इतिहास के पात्रों को उपन्यास का आधार बनाया है। जैसे कि उपन्यास की नायिका पंडिता रमाबाई का चरित्र। पंडिता रमाबाई एक ऐतिहासिक पात्र है। नारी शिक्षा के उत्थान में रमाबाई

की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है, जो नवोत्थानकालीन स्त्री चेतना की नींव बन गयी। "पंडिता रमाबाई भारत की सर्वप्रथम स्त्री-सुधारक शिक्षिता महिला पंडिता मानी जाती है। उन्होंने नारी-उत्थान को अपने जीवन में विशेष स्थान दिया था जिसके फलस्वरूप उन्होंने जीवन के अंतिम क्षण तक स्त्री शिक्षा एवं उसकी मुक्ति तथा उत्थान के लिए सर्वतोपरि प्रयत्न किया। उन्होंने बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध तथा सती प्रथा आदि अनेक कुप्रथाओं तथा प्रगति विरोधी अंधरूढ़ियों का तीव्र विरोध किया और उन्हें समाप्त करने के लिए अनेक दिशाओं में कार्य किया। वे स्त्री की शिक्षा पर विशेष बल देती थी। क्योंकि उनका कहना था कि केवल शिक्षित स्त्री ही अपने अधिकार स्वतंत्रता तथा प्रगतिशील विचार जैसी संकल्पनाओं के प्रति अधिक जाग्रत रह सकती है।"[1] पंडिता रामाबाई में समाज में प्रचलित उन रूढ़ियों का विरोध करने की प्रवृत्ति रही, जो नारी के विकास में अवरोधक बनती है। अर्थात् उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के विरोध में निरंतर संघर्ष करके धार्मिक और सामाजिक समस्याओं पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया साथ ही साथ स्त्री शिक्षा पर उन्होंने बराबर बल भी दिया।

पंडिता रमाबाई का जन्म 23 अप्रैल 1858 को पश्चिमी महाराष्ट्र के गंगामल में हुआ था। उनके पिता श्री अनंत शास्त्री एक विद्वान ब्राह्मण तथा समाज सुधारक और संस्कृति के पंडित थे। पंडिता रमाबाई ने 'द हाई-कास्ट हिन्दू वुमेन' नामक विख्यात पुस्तक लिखी हैं "एक उपदेशक के रूप में रमाबाई की ख्याति

---

1. दंगल झालटे - नये उपन्यासों में नये प्रयोग - पृ. 82

कलकत्ता के पंडितों तक पहुँची जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने रमाबाई को आमंत्रित कर उनका प्रवचन अपने कानों से सुनने, उन्हें देखने का निर्णय लिया। कलकत्ता के पंडितों को उनके विचारों की स्पष्टता एवं वाक्पटुता ने आश्चर्यचकित कर दिया। उनका भाषण सुनकर वे इतने भावविह्वल हो उठे कि उन्होंने रमाबाई के सामने ही उन्हें सरस्वती की उच्चतम उपाधि दे डाली।"[1] 1880 में उनकी शादी विपिन बिहारीदास मेघवी नामक वकील से हुई थी लेकिन 1882 में कॉलरा के कारण उनकी मृत्यु हो गयी। उस समय रमाबाई 24 साल की थी। अपने पति की मृत्यु के बाद अपनी बेटी मनोरमा के साथ रमाबाई पूने में बसने लगी। पूने में उन्होंने आर्य महिला समाज की स्थापना की। 1883 में रमाबाई ने इंग्लैंड में खुद को एक शिक्षिका के रूप में प्रशिक्षित करने एवं ईसाई धर्मोपदेशक चर्च में शामिल होने का फैसला किया। 10 अप्रैल 1889 में मुम्बई में उन्होंने एक गृह-सह विद्यालय शुरु किया तथा उसका नाम रखा 'शारदा सहन'। इन सब बातों से हमें यह प्रमाण मिलता है कि पंडिता रमाबाई एक ऐतिहासिक पात्र है। पंडिता रमाबाई के अतिरिक्त 'दस द्वारे का पिंजरा' नामक अनामिका के इस उपन्यास में महेन्द्रमिसिर, फैनी पॉवर्स, भिखारी ठाकुर जैसे सांस्कृतिक शखस भी ऐतिहासिक पात्र हैं।

अलका सरावगी का पहला उपन्यास 'कलि-कथा वाया बाइपास' असल में किशोर बाबू के जीवन की कहानी है। किशोर बाबू का जीवन भारत की सामाजिक, राजनैतिक चेतना की ही भाँति बदलता रहा। उपन्यास के अन्त तक आते आते किशोर बाबू पुनः अमोलक से मिलने की इच्छा रखता है, उसे सही मानने लगता

---

1. पंडिता रमाबाई - द हाई कास्ट हिन्दू वुमन, 1887,

है। यह भी समीचीन है कि यह उपन्यास कलकत्ता का, बंगाल में बसे मारवाडियों का सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास है। इसलिए यह उपन्यास कलकत्ता और बंगाल में बसे मारवाडियों की सांस्कृतिक अंतः प्रक्रिया का इतिहास बोध जगाता है। उपन्यास में लिखा गया है कि इसमें किशोर बाबू की जीवन के तीन पड़ाव हैं, असल में ये तीन पडाव तीन ज़िन्दगियाँ हैं। "किशोर बाबू की एक ज़िन्दगी में तीन ज़िन्दगियाँ जी गई है पहली ज़िन्दगी अपने स्कूल के मित्रों सुभाष भक्त शांतनु और गाँधी प्रेमी अमोलक के साथ गुजरे 1940-47 के उथल-पुथल भरे दिनों की है - '43 का बंगाल का अकाल, '46 की द ग्रेट कैलकटा किलिंग और '47 का विभाजन। दूसरी ज़िन्दगी उसके बाद के पचास सालों की है जिसमें पहली जिन्दगी की छाया तक नहीं है। तीसरी बाइपास आपरेशन के बाद उस वर्तमान से शुरु होती है, जो अभी हर वक्त हमारे आस-पास उपस्थित है। इसी दौर में किशोर बाबू को लगता है कि उनके जीवन की कथा एक मामूली आदमी का इतिहास ही रही, पर उसे अलिखित नहीं रहना चाहिए।"[1] यानी लेखिका ने किशोर बाबू के जीवन को तीन हिस्सों में बाँटा है। पहला किशोर बाबू की किशोर अवस्था से युवावस्था जहाँ माँ, विधवा भाभी, बेकारी, मजबूरी, सपने, दंगा, भारत के नेता, आदर्श गाँधी आदि हैं। कभी-कभी इन सब के परे ढकेलने कभी कुछ और की तलाश करते किशोर का मन है। दूसरा पक्ष किशोर की तरुणाई से लेकर पचास वर्ष तक का जीवन है। तीसरा चरण किशोर बाबू के जीवन के पचास वर्ष के बाद का है।

---

1. अलका सरावगी - कलिकथा वाया बाइपास - फ्लाप से

शांतनु राय और अमोलक किशोर के मित्र हैं। इनमें शांतनु सुभाष चंद्र बोस प्रेमी है और अमोलक गाँधी प्रेमी है। शांतनु और अमोलक के बीच झगड़ा होता रहता है क्योंकि शांतनु कहता है कि सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित होकर भी अपनी वर्किंग कमेटी नहीं बना सके क्योंकि गाँधीजी उनका समर्थन नहीं कर रहे थे और जब सुभाष चन्द्रबोस को कांग्रेस से इस्तिफा देना पड़ा तो अमोलक को शान्तनु ने अपनी मित्र मंडली से बाहर निकाल दिया। "शांतनु राय सुभाष बाबू का भक्त है जिन्होंने, उसके खयाल से, शेरनी का दूध पिया है। शांतनु टाऊन हॉल में अपने पाडे (मुहल्ले) के किसी दोस्त के साथ सुभाष बाबू की सभा में भी जा आया है। उसने वहाँ मन ही मन एक कसम खाई है। प्लासी की लड़ाई में नवाब सिराजुद्दोला द्वारा एक कमरे में कैद करने से मर गए अंग्रेज़ सैनिकों की यादगार में बनाए गए 'होलवेल मान्यूमेंट' या ब्लैक होल को सुभाष बाबू जब तोड़ने जाएँगे, तो वह भी उसमें शामिल होगा।"[1] यहाँ पर शांतनु की सुभाष भक्ति साफ साफ झलकती है। शान्तनु किशोर बाबू से कहता है कि मारवाड़ी लोग आज़ादी की लड़ाई में भाग नहीं ले सकते। वे इतने दब्बू और डरपोक है कि न जेल जा सकते हैं और न ही पुलीस के डंडे खा सकते हैं। हर समय उन्हें जान और माल की ही फिक्र लगी रहती है। इसलिए वे ज़्यादा से ज़्यादा गाँधीजी के बकरी के दूध पीने का इंतजाम करते हुए और चरखा कातते हुए उनके आगे पीछे घूम सकते हैं।

'कलिकथा वाया बाईपास' में ऐतिहासिक आख्यान भी है और समकालीन राजनीति व अपसंस्कृति के हर पहलू पर तीखी दृष्टि डालता, सभी छल-छद्म

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा वाया बाईपास - पृ. 16

उजागर करता, एक सशक्त हस्तक्षेप भी है। गाँधीजी, सुभाष चन्द्रबोस आदि राष्ट्र नेताओं के ज़रिए यह उपन्यास की ऐतिहासिकता को और भी बढ़ाता है।

अलका सरावगी ने उपन्यास के प्रारंभ में देश की गुलामी के इतिहास की ओर कुछ संक्षिप्त संकेतों से भारत के दुर्भाग्यपूर्ण युग की कथा को उपन्यास के पहले काल-खंड के रूप में प्रस्तुत किया है। अर्थात् 'कलि-कथा वाया बाइपास' के आख्यान की शुरुआत देश की गुलामी की शुरुआत से होती है। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को मीर जाफ़र जैसे अपने ही सेनापतियों के षड्यंत्रों का शिकार बनना पड़ता है और अमीचन्द, मीरजाफर और जगत सेठ जैसे बनियों के चालबाज़ियों एवं धोखाधड़ी के कारण परास्त होना पड़ता है। "मीरजाफर ने अमीचंद और जगत सेठ से मिलकर गद्दारी नहीं की होती, तो सिराजुद्दौला तो फोर्ट विलयम पर कब्जा कर ही चुका था। हो सकता है कि एकाध अंग्रेज गर्मी या घुटन से मर गया हो, पर अंग्रेजों ने जान-बूझकर मरनेवालों की संख्या को बढ़ा-चढ़ाकर दुनिया के सामने यह सिद्ध करने की कोशिश है कि देखो यहाँ के नवाब कितने जंगली और बर्बर हुआ करते थे। मरनेवालों की यादगार में यहीं हमारे सीने पर यह स्मारक खड़ा कर दिया गया है। नाम दिया है ब्लैक होल ऑफ कैलकेटा।"[1] लेखिका ने अनेक ऐतिहासिक घटनाओं को अपने इस उपन्यास के ज़रिए पाठकों के सामने रखा है उनमें से एक है 1757 में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के नेतृत्व में घटित 'प्लासी का युद्ध'। इस तरह देश की गुलामी की नींव 1757 में पड़ती है और तत्पश्चात् देश की बागडोर अंग्रेज़ों के हाथों में चली जाती है। सौ सालों बाद, अर्थात् 1857

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा वाया बाइपास - पृ. 21

में, कम्पनी बहादुर के शासन को उखाड़ फेंकने का प्रयास देश के राजा-रजवाड़े और दिल्ली बादशाह करते ज़रूर हैं लेकिन कुछ हासिल नहीं होता। इन दोनों ऐतिहासिक काल-खण्डों में किशोर बाबू के पूर्वजों की भूमिका रही है। यद्यपि अमीचन्द के सिख खत्री, बनिया होने के कारण यह सम्बन्ध अधूरा रह जाता है, तथापि जगतसेठ के मारवाड़ी ओसवाल होने की वजह से रिश्ता निकट हो जाता है। इस बात को जानकर किशोर बाबू के मन में अपराध-भाव पैदा हो जाता है और यह संकेत निश्चित सा हो जाता है कि मारवाड़ी बनिया होने के कारण लांछन उस पर भी आता है।

लेखिका अलका सरावगी ने अपने इस उपन्यास के ज़रिए, किशोर बाबू और उनके परिवार के ज़रिए लगभग ढाई सौ सालों के इतिहास को जीवन्त किया है तो दूसरी ओर किशोर बाबू और उनके परिवार को ऐतिहासिक महत्व प्राप्त हो जाता है। मारवाडी जाति और कलकत्ता महानगर के इतिहास को भी प्रस्तुत किया है। 1857 के गदर में हैमिल्टन साहेब को बचाने के लिए किशोर बाबू का प्रपितामह घमण्डीलाल को एहसान भरा मुआवज़ा मिलता है और वह 1863 में दिल्ली और कलकत्ता के बीच रेल-लाइन लग जाने पर कलकत्ता पहुँचता है और हैमिल्टन साहेब की सहायता से अपना रोज़गार करता है और कारोबार बढ़ाता है। उसके बेटे की मदद से दादा रामविलास भी अपने व्यापार में सफल होता है। उसका बेटा केदारनाथ अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करता है और भीवाणी चला जाता है और वहीं पर रहते हुए मारवाड़ी समाज के सुधार के लिए आजीवन प्रयत्न करता है। इसी प्रकार कई ऐतिहासिक काल-खण्डों को प्रस्तुत करते हुए किशोर बाबू के परिवार के लोगों को कथा बन्धों में सम्मिलित किया है। इन ऐतिहासिक

काल-खण्डों में लॉर्ड कर्ज़न (1906) द्वारा किये गये बंगाल के विभाजन की घटना और उसके विरुद्ध होने वाले आपत्तियों का उल्लेख है। 1939 में व्यक्तिगत सत्याग्रह में शामिल होने की कांग्रेस की राजनीति की विस्तृत चर्चा की गयी है। तत्पश्चात् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में देश में पैदा हो गये विप्लव का भी प्रभावी वर्णन प्रस्तुत किया गया है। हिन्दु-मुस्लीम दंगे और 1992 दिसंबर 6 में अयोध्या में घटित बाबरी मस्जिद ध्वंस का वर्णन भी है। हिंदु-मुस्लीम दंगों की भयंकरता का विशद चित्रण 'द ग्रेट किलिंग' में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार देश विभाजन, पाकिस्तान निर्माण और हिन्दु-मुस्लिम मारकाट पर भी लेखिका ने बड़ी कुशलता के साथ मानवीय चित्र उकेरा है। ये सभी ऐतिहासिक काल-खण्ड औपन्यासिक प्रसंगों के काल-बन्धों से जुड़े हुए हैं। अपने उपन्यास 'कलि-कथा वाया बाइपास' की इतिहास चर्चा के पीछे का राज़ खोलते हुए लेखिका खुद लिखती हैं कि - "मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि मेरी, इतिहास जैसी चीज में ऐसी रुचि होगी। शायद वर्तमान को ज़्यादा अच्छी तरह एडाप्त करने के लिए मैं अतीत की तरफ मुड़ती हूँ। 'कलि-कथा वाया बाइपास' का मुख्य कथ्य एक आदर्श के खो जाने का है और जब आप खोए हुए आदर्श की पड़ताल करते हैं तो आपको अतीत की तरफ जाना ही होता है। यह भी संयोग रहा कि जब मैं लिख रही थी तो भारत आज़ादी की पचासवीं वर्षगांठ माना रहा था। यह जो किशोर बाबू का चरित्र है जिसने पचास साल एक समझौते का जीवन जिया, जहाँ गाँधी पाँच-दस के नोट में तब्दील हो जाते हैं। यही किशोर बाबू जब आदर्श की बात करते हैं तो उनके लिए वर्तमान में जगह नहीं बचती।"[1] यानी स्वतंत्र भारत के इतिहास के समानांतर किशोर बाबू के

1. वागर्थ (भारतीय भाषा परिषद की मासिक पत्रिका) जुलाई 2004 (सं) रवीन्द्र कालिया

चरित्र को रखा गया है। किशोर बाबू का चरित्र किस तरह स्वार्थी एवं व्यक्तिगत केन्द्रित होता रहा था उसी के अनुसार देश का प्रशासन आदर्श एवं नैतिकता को एक कोने में रखकर भ्रष्टाचार एवं अन्याय का मार्ग अपनाया है। लेखिका इस इतिहास को व्यक्त करती है।

'मैं बोरिशाइल्ला' महुआ माजी का पहला उपन्यास है। अपनी पहली ही कृति से उन्होंने पाठकों, आलोचकों व शोधार्थियों को अपने उपन्यास के पृष्ठ दर पृष्ठ से गुज़रने को मजबूर कर दिया। यह उपन्यास इतिहास का पुनर्पाठ करता है। यह एक अवसर देता है इतिहास को फिर से पीछे मुड़कर देखने का और समझने का जहाँ हम ने कभी धर्म, भाषा, संस्कृति, राष्ट्र और नस्ल के नाम पर कई गलतियाँ की। बंग विभाजन 1905 से लेकर वर्तमान बंगलादेश 1992 के परिदृश्य को उजागर करता हुआ यह उपन्यास, इतिहास की एक औपन्यासिक परिकल्पना है। इस उपन्यास में लेखिका महुआ माजी ने मात्र कोरा इतिहास को ही नहीं बल्कि धर्मान्धता, सत्ता की आंधी को भी दिखाया है। इसमें उन सैकड़ों गुमनाम चरित्रों के साक्षात्कार व व्यक्त अनुभव है, जिनकी आँखों में बंगभूमि की तस्वीर आज तक चलती फिरती सी नज़र आ जाती है।

केष्टो घोष नामक नायक की बचपन की स्मृतियों से विस्तार पाती यह कथा बंग विभाजन, स्वतंत्रता और विभाजन तानाशाही सेना की निरंकुशता, भाषायी आन्दोलन, राष्ट्रवाद व मुक्ति संग्राम के चौड़े रास्ते पर आगे बढ़ती है और बीच-बीच में अधूरा प्रेम विस्थापन, बेरोजगारी, मौत की विभीषिका के मोड़ से भी गुज़रती है। कुल मिलाकर यह उपन्यास साम्प्रदायिक राष्ट्र की संकल्पना की

व्यर्थता का पुरजोर ढंग से खुलासा करता है। राष्ट्रवाद तथा भाषा के प्रश्न पर भी नये सिरे से सोचने के लिए मजबूर करता है। अन्य कई तरह के विमर्शों, आख्यानों के बीच यह उपन्यास मानव मन की मूलभूत रागात्मकता को भी उभारता है।

उपन्यास में बंगभूमि की प्रकृति तथा बांगला गीतों के युग्म से सजीव हो उठती बांगला संस्कृति को भी उकेरा गया है। साथ ही पद्मा-मेघना की धारा में बजरे पर गीत गाते मछुआरों की टोर भी है। स्वयं लेखिका महुआ माजी के शब्दों में - "अतीत के गहर में दबी पड़ी कुछ चीखों को... सिसकियों को... हर्ष विषाद को संभालकर वर्तमान में लाने की लोकमानस में और इतिहास के पन्नों पर बिखरे एक कालखण्ड के पुरावलोकन की, धर्म, संस्कृति और वर्चस्व के चौपड़ को समझने की एक कोशिश है यह उपन्यास।"[1] यह उपन्यास इतिहास के उन पन्नों को फिर से खोलता है जहाँ विभाजन, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता, तानाशाही के बीज हैं।

अपने पूर्वजों की स्मृतियाँ, कथाएँ, मिथक आदि अतीत जो परम्परा में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चला आ रहे हैं, एक साझेपन की भावना विकसित करते हैं। इस उपन्यास के प्रारम्भ में ही लेखिका लिखती है "मैं यह स्वीकार करती हैं कि इस उपन्यास में जो कुछ है, वह उन तमाम लोगों का है, जिन्होंने इस उपन्यास में वर्णित घटनाओं को देखा, भोगा, झेला और उनके बारे में कहा या लिखा। यह उपन्यास इतिहास के उस क्षण का भी पुनर्पाठ कराता है जब एक रेखा खिंच जाने के बाद पलक झपकते ही दो देश बन गए। एक तरफ आज़ादी मिली थी तो दूसरी

---

1. महुआ माजी - मैं बोरिशाइल्ला - पृ. 7

तरफ मायूसी फैल गयी। उपन्यास का एक अंश यूं है - "हम रातोंरात हिन्दुस्तानी से पाकिस्तानी बन गये। पाकिस्तानी बनते ही सबसे पहले मैंने अपने आपको टटोलकर देखा। कहीं से कोई बदलाव नहीं। जैसा पहले था, बिल्कुल वैसा ही रहा। वही रंग, वही कद, वही तैन-नक्शा... मगर हाँ चारों ओर पटाखे फूटने लगे थे। रंग-बिरंगी रोशनी में शहर जगमगाने लगा था। गगनभेदी नारों से आसमान फटा जा रहा था...."[1] यहाँ पर लेखिका यह बताना चाहती है कि हिन्दू हो या मुसलमान, भारतीय हो या पाकिस्तानी इन्सान नहीं बदलता बल्कि मात्र उसके शासक बदलते हैं, सोच-विचार में अन्तर्विरोध जगह पाता है।

यह उपन्यास इतिहास का पुनर्पाठ करता हुआ बतलाता है कि किस तरह अंग्रेज़ों के खिलाफ लड़ते-लड़ते हम स्वयं से लड़ बैठे किस तरह एक धर्म के आधार पर बना देश दो खण्डों में विभाजित हो गया। इतिहास की रक्तंरजित कहानी के पुनर्पाठ के बाद यह उपन्यास यह मांग करता है कि इतिहास वर्तमान तक चली आने वाली स्वस्थ परम्परा बन सके। इस तरह महुआ माजी का यह उपन्यास भाषा की शक्ति, महत्व को रेखांकित करते हुए बंगलादेश की स्वतंत्रता की रीढ़-भाषायी राष्ट्रवाद पर प्रकाश डालता है।

इतिहास हमेशा स्वयं को मूल्यांकित करने का मौका देता है। इतिहास गुण-दोष स्वीकार करने का माध्यम है। 'मैं बोरिशाइल्ला' भी इसी ऐतिहासिक श्रृंखला की एक कड़ी है। पहले ब्रिटिश हुक्मरानों ने धर्म के नाम पर बाँटा, फूट

---

1. महुआ माजी - मैं बोरिशाइल्ला - पृ. 79

डाला और राज किया। फिर उनके जाते-जाते हम स्वयं ऐसा करने लगे। धर्म के नाम पर दो राष्ट्र बने। कहीं न कहीं इतिहास स्वयं को दोहरा रहा था। ऐसे में अगर अतीत को पलट कर देखें व सीखें तो शायद इस बला से बचा जा सकता है। यह उपन्यास भी सिर्फ एक पाकिस्तान व बांगलादेश बनने का इतिहास नहीं है। इसकी पंक्तियों में वे अर्थ हैं जिनसे सबका सीख कर किसी नयी रक्तरंजित व बर्बरता की कहानी दुहराये जाने से बचा जा सकता है।

4.1.1 राजनैतिक परिदृश्य

'राजनीति' मानव निर्मित समाज व्यवस्था का एक अभिन्न अंश है। आज समय के साथ-साथ सत्ता और शासन-प्रणाली संबन्धी सामाजिक मान्यताओं में भी बदलाव होता आ रहा है। भारतीय जनता एक ओर उसके आविर्भाव के समय से जनतांत्रिक शासन प्रणाली का समर्थक है तो दूसरी ओर उसकी तानाशाही प्रभुसत्ता का विरोधी भी है। हम सब इस बात से अच्छी तरह वाकिफ़ है कि जब तक सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त न हो तब तक राजनैतिक स्वतंत्रता का भी कोई महत्व नहीं। देश में साम्राज्यवाद विरोध प्रवृत्तियाँ संगठित हुईं और स्वतंत्रता आन्दोलन में गति मिली। 'गाँधीजी' के नेतृत्व में अनेक देश भक्त नेताओं ने देश के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया। ब्रिटिश सत्ता का विरोध और स्वराज प्राप्ति की माँग इसी राष्ट्रीय भावना का ही परिणाम है।

आज भारत की राजनीति दिशा हीन हो गयी है। स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजी शासन और शोषण खत्म करने का मक्सद जनता के मन में था। अंग्रेज़ भारत छोड़कर चले जाने पर सब कुछ ठीक हो जायेगा यह मोह भी जनता के दिल में था।

लेकिन आज राजनीति किसलिए? यह सवाल जनता के मन में उठने लगा है और उसके लिए जवाब ढूँढना पड़ रहा है। लोगों ने देश की भलाई के साधन के रूप में, अपनी कष्टताओं को मिटाने के एक साधन के रूप में राजनीति को अपनाया। क्योंकि अधिकार हाथ में आए तो सब की भलाई होगी ऐसा सपना देखा था। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर काल में स्थितियाँ जल्दी बदलने लगीं। क्योंकि स्वतन्त्रता परवर्ती युग में राजनीति में अवसरवादियों, सत्तालोलुपों और चरित्रहीन व्यक्तियों की भरमार हो गई। फलतः स्वराज के प्रति जनता का मोह भंग हो गया और लोग राजनीति के प्रति शंका एवं राजनीतिज्ञों के प्रति घृणा का भाव रखने लगे हैं। आज के राजनेताओं ने व्यापारियों और पूंजीपतियों से मिलकर महंगाई बढ़ाई। धर्म और जाति के आधार पर चुनाव में सांप्रदायिकता की महामारी इन्होंने फैलाई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भ्रष्ट राजनीति के ही चलते अनैतिकता और अराजकता के कीटाणु सभी पेशों और नौकरियों के भीतर तक प्रवेश कर गए हैं "हमारी वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था धन के लोभ के कारण अत्यंत दूषित हो गई है। राजनेताओं की नवाबी जीवन शैली ने इस प्रवृत्ति को बढ़ाया है। यदि नई पार्टी सादगी का व्रत ले और अपने विशेषाधिकारों के त्याग की घोषणा करे, तो उसकी साख तुरंत जमेगी। भ्रष्टाचार पर भी तभी कारगर चोट की जा सकती है जब राजनेताओं का अपना चरित्र बदले।"[1] यानी स्वच्छ राजनीति के अभाव में स्वच्छ प्रशासन की परिकल्पना भी असम्भव है अतः यदि जनजीवन में मूल्यों की पुनर्स्थापना करनी है तो उसके लिए सर्वप्रथम राजनीति एवं प्रशासन को स्वस्थ वातावरण प्रदान करना ही होगा।

---

1. मस्तराम कपूर - नैतिक लोकतंत्र की तलाश (राष्ट्रीय विकल्प कैसे बने) पृ. 239

प्रायः सभी सामाजिक उपन्यासों में भी राजनैतिक पहलू का चित्रण समग्र जीवन दृष्टि से होता है। उन चित्रों से तद्युगीन भारतीय राजनीति के उथल-पुथलों, स्वतंत्रता संग्राम तथा गाँधीवाद, मार्क्सवाद तथा आतंकवाद आदि राजनतिक विचारधाराओं अतिवादों की विशद जानकारी हमें प्राप्त होती है।

अलका सरावगी का उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइपास' वैश्वीकरण के सन्दर्भ में राष्ट्रोन्मुख विचारों को अभिव्यक्त करता है। प्रस्तुत उपन्यास के नायक किशोरबाबू का जीवन भारत की सामाजिक, राजनैतिक चेतना की ही भाँति बदलता रहता है। उपन्यास में देश के समस्त राजनीतिक विद्रोहों का औपन्यासिक विन्यास प्रस्तुत किया गया है। इस आख्यान में न केवल महात्मा गाँधी और सुभाष चन्द्रबोस हैं बल्कि काँग्रेस, हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा एन.जी.ओ. तथा विश्वग्राम के विचारों की छानबीन भी की गयी है। लेखिका ने इस उपन्यास में गाँधी जी और सुभाष चन्द्रबोस के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करने वाले पात्रों को भी प्रस्तुत किया है, जो अन्दोलनों तथा अन्य गतिविधियों में सक्रिय हैं। जैसे कि एक ओर गाँधी विचारों का अमोलक है तो दूसरी ओर सुभाष के अनुयायी एवं परम भक्त शान्तनु राय। ये दोनों ही किशोर के घनिष्ठ मित्र हैं, जो कांग्रेस के चरित्र को लेकर 1997 तक आगे बढ़ा है।

'कलिकथा वाया बाइपास' का सबसे अहम मुद्दा है; गाँधी दृष्टि का प्रसार। अलका मानती है कि इस पतनशील देश में अब भी गाँधी के विचार प्रासंगिक है। "अलका सरावगी के उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइपास' में गाँधीवाद के अवमूल्यन

की पड़ताल की गई है। जिस गाँधीवादी विचारधारा से लोग प्रभावित हुए, क्या जीवन के व्यवहारिक पक्ष में वह उन्हें कुछ दे नहीं सका? क्या गाँधी की वैचारिकता एक आडम्बर थी? गाँधीवाद के कट्टर समर्थकों ने ही गाँधी का सफाया कर दिया।"[1] गाँधी को भुलाकर इस देश की नैतिक, शुचितासम्पन्न और यहाँ की राजनीति को स्वच्छ बना पाना नामुमकिन है। इस देश में जहाँ भी हिंसा होती है, 'गाँधी' ही मरते हैं। अयोध्या के उन्मादियों ने भी तो गाँधी को मारकर ही मस्जिद को ध्वस्त किया था। यह आश्चर्यजनक भले ही लगे, पर सच तो यह है कि उपन्यास में अमोलक मरकर भी जीवित हो जाता है। यह प्रतीकात्मक है, क्योंकि किसी विचार की हत्या नहीं हो सकती। गाँधी मर सकते हैं, गाँधी की दृष्टि नहीं मर सकती।

शांतनु, सुभाष चन्द्रबोस के व्यावहारों से उनके विचारों से बहुत ही प्रभावित है। वह जानता है कि सुभाषबाबू ने देश के लिए कितना त्याग किया है। शांतनु के पिता को सुभाष बाबू का व्यवहार पसंद नहीं। शांतनु जानता है कि उसका पिता गलत है। अतः वह अपने बाप को सुनाता है - "सुभाष बाबू ने सिविल सर्विस की इतनी बड़ी नौकरी छोड़ी। चौथे नंबर पर स्थान प्राप्त करने पर भी अपना कैरियर देश के लिए स्वाहा कर दिया। ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन कर रहे हैं भारत माता के लिए और आप कहते हैं कि वे व्यक्तिगत रूप से बहुत महत्वाकांक्षी हैं। मैं कहता हूँ आप सब अंग्रेज़ों के पिट्ठू हैं।"[2] उपर्युक्त कथन से शांतनु के जरिए युवा वर्ग में स्थित राष्ट्रोन्मुख विचारों को अभिव्यक्ति मिलती है,

---

1. हेमलता महिश्वर - स्त्री लेखन और समय के सरोकार - पृ. 85
2. अलका सरावगी - कलिकथा वाया बाइपास - पृ. 97

जो पुरानी स्वार्थी पीढ़ी को फटकारने में हिचकती नहीं। परन्तु आज़ादी के बाद धीरे-धीरे ये परिदृश्य बदलते हैं। शांतनु एक बड़ी एन.जी.ओ का संचालक बन कर धन एकत्र करता है और एक शक्तिशाली व्यक्ति बन जाता है। अपने बाबा-दादा की खंडहार हवेली की मरम्मत करवा कर वह उसे एक भव्य महल में परिवर्तित कर देता है और नये वैभव में शान के साथ जीवन व्यतीत करता है।

उपन्यास में किशोरबाबू के मामा के कपड़े की एक दुकान है जिसमें अंग्रेजों की मिलों के कपड़े बिकते हैं। उसके मामा की मान्यता है कि अपने पेट पर लात मारकर देश-सेवा नहीं करनी है। किंतु किशोर को अपने बड़े मामा की यह बात पसंद नहीं आती। वह सोचता है - "शांतनु की बातें कितनी सही थी। इन्हें किसी देश-समाज-धर्म नाम की चीज़ से कोई मतलब नहीं। ये सिर्फ अपने मुनाफे की सोच सकते हैं - 'साले, घी में चरबी मिलानेवाले लोग'। वह देखता है कि व्यापारी बिलकुल नहीं चाहते कि धंधे में तेज़ी आए। लड़ाई बंद होने या अंग्रेजों के हारने की अफवाह उड़ जाती है, तो बाजार मंद पड़ जाता है। किशोर का मन होता है कि सड़क पर खड़े होकर चिल्ला-चिल्ला कर कहे - 'अर्थ-पिशाचो, तुम्हारा यह मुनाफा तुम्हारी अगली पीढ़ियाँ नहीं भोग सकेंगी। सब खतम हो जाएगा।"[1] यहाँ पर राष्ट्र प्रेम भुलाकर अपने मुनाफे के बारे में सोचनेवालों के प्रति किशोर इन शब्दों के ज़रिए अपना विद्रोह प्रकट करता है। इतिहास, राजनीति व आभिजात्य के सहमेल को अलका सरावगी ने जिस तकनीक से सम्भव बनाया है, वह उनका

---

1. अलका सरावगी - कलि कथा वाया बाइपास - पृ. 115

अपना कथा-मुहावरा है। राजनीतिक व ऐतिहासिक प्रसंगों एवं स्मृति के प्रयोग की अलका सरावगी अपनी तकनीक में इस प्रकार विन्यस्त कर लेती हैं कि अक्सर तकनीक ही कथ्य लगने लगती है।

गाँधी जी के ज़माने में राजनीति जनता के लिए थी। अब राजनीति के खेल के लिए जनता को साधन बनाकर इस्तेमाल किया जा रहा है। स्वार्थता के वश में राजनीति में राजनीतिज्ञ सब अपनी आँख बन्ध करते रहते हैं। अधिकार मोह से तत्पर होकर भ्रष्टाचार करने में वे हिचकते नहीं। अधिकार को बनाये रखने के लिए किसी प्रकार के कार्य करने को आज लोग डरते नहीं है। हमारी राजनीति की नींव अनेक महात्माओं के कठोर प्रयत्न से डाली गयी थी। अब वह तो स्वार्थ तत्परता की पूर्ति का साधन बन गया है। हिन्दी की युवा लेखिका महुआ माजी ने अपना पहला उपन्यास 'मैं बोरिशाइल्ला' में 'केष्ठो घोष' नामक चरित्र के माध्यम से बंगाल, पूर्वी पाकिस्तान से स्वायत्त बांगलादेश के अभ्युदय की महा गाथा लिखी हैं। पूरे देश और समाज की निराशा, हताशा, आक्रोश एक ही व्यक्ति की चेतना में पूँजीभूत हो जाते हैं। साथ ही साथ उपन्यास में चित्रित सारी घटनाओं, दुर्घटनाओं और त्रासदियों को भी प्रस्तुत किया गया है। महुआ माजी का प्रस्तुत उपन्यास यह स्थापित करता है कि एक राष्ट्र का गठन धर्म, नस्ल, साम्प्रदाय के नाम पर हो सकता है, पर उसमें स्थायित्व की गारण्टी नहीं होगी। साथ ही साथ यह उपन्यास इतिहास के उन पन्नों को फिर से खोलता है जहाँ विभाजन, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता, तानाशाही के बीज हैं। लेखिका के अनुसार यह उपन्यास "अतीत के गहर में दबी-पड़ी कुछ चीखों को सिसकियों को... हर्ष-विषाद को सँभालकर वर्तमान में लाने

की, लोकमानस में और इतिहास के पन्ने पर बिखरे एक कालखंड के पुनरावलोकन की धर्म, संस्कृति और वर्चस्व के चौपड़ को समझने की एक सामान्य कोशिश है।"[1] और उनके अनुसार यह उपन्यास उन तमाम लोगों का है, जिन्होंने इस उपन्यास में वर्णित घटनाओं को देखा, भोगा, झेला और उसके बारे में कहा या लिखा। अपने बचपन से ही लेखिका को बंगला से लगाव रहा था। राँची और कलकत्ता में काफी बंगलादेशी रहते हैं, इसलिए बचपन से उनके संपर्क और संस्पर्श में रहने का मौका लेखिका को मिला था। जिसके कारण उन्होंने दंगे-फसाद से त्रस्त होकर भाग आए लोगों के दुख-दर्द को उन्होंने देखा, महसूस किया।

'मैं बोरिशाइल्ला' उपन्यास में भाषायी आन्दोलन के राजनीतिक विचार का उल्लेख है। आम चुनाव को लेकर आम जनता उत्सुक भी है और कहीं न कहीं अपनी भाषा पर आए संकट को इस चुनाव से निपटने को भी तैयार है। उपन्यास के एक पात्र जँगाई दा कहते हैं कि "जो सरकार हमारा आर्थिक, राजनीतिक शोषण करने के साथ-साथ हमारी भाषा, संस्कृति, साहित्य तक को निश्चित करने पर तुली हुई है, उससे हम उम्मीद भी क्या कर सकते हैं? मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस चुनाव में यहाँ के लोग पश्चिमी पाकिस्तानियों को किसी भी हाल में नहीं जीतने देंगे।"[2] यह सिर्फ उपन्यास का एक पात्र जँगई दा ही नहीं बल्कि पूरी पूर्वी पाकिस्तान के लोगों का दावा था साथ ही साथ शपथ भी। इसका आरंभ तो तभी हो गया था जब जिन्ना ने ढाका विश्वविद्यालय में आकर उर्दू को राष्ट्रभाषा घोषित

---

1. महुआ माजी - मैं बोरिशाइल्ला - पृ. 7
2. वही - पृ. 171

किया था और छात्रों ने प्रतिवाद करते हुए कहा था - "हमें अपनी भाषा, अपने साहित्य तथा संस्कृति पर अत्यंत गर्व है। इस पर हम किसी प्रकार का आक्रमण नहीं सहेंगे।"[1] इस तरह भाषा का प्रश्न किस तरह सत्ता का प्रश्न बनता जा रहा था, उपन्यास में बखूबी दिखाया गया है। भाषा का वह आंदोलन अब पश्चिमी पाकिस्तान के साथ ही उर्दू के आधिपत्य के विरुद्ध खड़ा हो रहा था। चुनाव में भाषा ही महत्वपूर्ण मुद्दा रही जिससे न सिर्फ पूर्वी पाकिस्तानियों या कहें बांग्लाभाषियों की एकता उभरकर सामने आयी बल्कि अब उन्हें सत्ता की सुगंध महसूस होने लगी थी।

4.1.2 आमजनता का शोषण

आधुनिक जीवन में धन की शक्ति असीम रूप से बढ़ने लगी है। आत्मा तक को खरीदने का अपनी ताकत के कारण पैसा मानव को अपने हाथों का खिलौना बना डालता है। इस आर्थिक पहलू ने आम जन जीवन तथा जीवन दर्शन पर सर्वाधिक प्रभाव डाला है। आम जन जीवन में सर्वसाधारण घटनाओं, दुर्घटनाओं, कलह-क्लेश, राग-द्वेष एवं छल-कपटता की यथार्थ झाँकियाँ प्राप्त होती हैं। आर्थिक अभाव और प्रणय-नैराश्य ही दो मूल समस्यायें होती हैं जिनसे हर निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति का जीवन प्रश्नपूर्ण बन जाता है।

घुटन-भरी जिन्दगी की विशद चर्चा से आम जीवन की अनेक बुनियादी समस्याओं पर लेखिका अलका सरावगी ने सफलतापूर्वक प्रकाश डाला है। आम

---

1. महुआ माजी - मैं बोरिशाइल्ला - पृ. 172

जनता की सबसे बड़ी समस्या रोटी, कपड़ा और मकान है। अपना उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइपास' में लेखिका ने इन समस्याओं पर प्रकाश डाला है। उपन्यास के किशोर बाबू सोचता है कि - "आदमी की क्या कीमत है? कीड़े मकोड़े की तरह मरते हुए लोग, लाखों लोगों के भूख और बीमारी से मरने की स्थिति जब आदमी ही आदमी के लिए पैदा कर दे, तब यह समझना चाहिए कि अब मनुष्यता के लिए थोड़े से शब्द मनुष्य से बड़े हो गए हैं : देश, वतन, सरकार, सिद्धांत, कर्तव्य, हक सारे शब्द आखिर शब्द है। भूख से मरते एक आदमी के लिए इन बड़ी-बड़ी बातों का क्या अर्थ है?"[1] निश्चय ही आम जनता की सबसे ज्वलंत समस्या रोटी की ही है। बिना रोटी के आदमी ज़िन्दा नहीं रहता। इसके लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाता है। इस रोज़ी-रोटी का लालच देकर पूँजीपति लोग आम जनता का शोषण करते ही रहते हैं।

एक बार अमोलक के घर एक भिखारी बच्चा आ जाता है। किशोर जब उस बच्चे को गौर से देखता है तो उसे बिजली का झटका सा लगता है बच्चे की पलकें स्थिर थीं। वह पलकें बिल्कुल नहीं झपका रही थी। अपनी बीमारी के कारण वह बच्चा मर जाता है। अमोलक नहीं जानता कि मरे हुए का क्या किया जाता है? लेकिन किशोर जानता था। वे दोनों उस बच्चे की लाश को उठाकर श्मशान घाट जाते हैं। किशोर ने एक बार अखबार में पढ़ा था कि कुत्ते बच्चों की लाशें खा लेते हैं। "भूख आदमी को क्या बना सकती है - यह देखने के बाद क्या हम कभी जीवन

---

1. अलका सरावगी - कलिकथा वाया बाइपास - पृ. 147

की सुन्दरता के बारे में सोच सकेंगे? प्यार, ममता, त्याग, धर्म अब क्या इन बातों का हमारे लिए फिर कभी पहले जैसा अर्थ रह पाएगा। निर्मल, निर्दोष अर्थ?" अमोलक कहता है। सचमुच किशोर को लगने लगा है कि उसके अंदर कुछ जमकर पत्थर की तरह ठोस हो गया हो।"[1] आज मानव के मन से दूसरों के दुःख सुन कर पिघल जाने वाला दिल गायब होता जा रहा है। लाखों अनाथ और भिखारी बच्चे भूख और बीमारी के कारण मर रहे हैं। सड़कों पर दर-दर की चोट खाते फिर रहे हैं। उनकी ओर सहानुभूति से देखने वाला कोई नहीं है। लेखिका ने इस बात की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने की कोशिश की है। साथ ही छोटे-छोटे बच्चों को भिखारी बनाकर उनका शोषण करने वालों पर भी ज़ोर दिया है।

लेखिका अलका सरावगी ने कलकत्ते की सड़कों पर भीख माँगते-फिरते भिखारियों के दारुण दृश्यों को भी इस उपन्यास में बयान किया है। किशोर के पिताजी के मित्र सम्पत चाचा एक बार किशोर से बताते हैं कि बंगाल के गाँवों के लोगों के पास खाने को कुछ नहीं बचा तो वे लोग अपने सारे बर्तन भांडे बेच कर चावल खरीद कर खाते हैं और जब सब कुछ खाली हो गया तो वे अपना गांव छोड़कर कलकत्ता आ जाते हैं। एक बार अमोलक के घर के बाहर नुक्कड़ पर एक परिवार ने पिछले दो सप्ताह से डेरा डाल रखा था। उस परिवार के बाप और बेटा रोज भीख मांगकर लाते हैं। माँ और जवान बेटी वहीं बैठी रहती हैं। बाप बेटी को भी भीख मांगने जाने के लिए मज़बूर करता है। उस लड़की के पास अपना शरीर

---

1. अलका सरावगी - कलि कथा वाया बाईपास - पृ. 148

ढकने के लिए तक कपड़े नहीं थे इसलिए वह राज़ी नहीं होती। फिर अपने बाप के मार-पीट के डर से वह भीख मांगने लगती है "किशोर ने भी उस नुक्कड़वाली लड़की को पिछले रविवार को देखा था। अपनी गरीबी और भूखमरी के बावजूद लड़की में ऐसा सलोनापन था कि उसकी तरफ आँखें गए बिना नहीं रहती थीं। किशोर को उस लड़की के लिए काफी डर लगा था - न जाने कितने लोग उस पर घात लगाए बैठे होंगे।"[1] लड़कियाँ बड़े हो या छोटे वे यौन शोषण का शिकार हो जाती हैं। कहीं पर भी वह इसके शिकार हो जाती हैं, वे सुरक्षित ही नहीं। उपन्यास में अमेरिकन सैनिकों द्वारा चार-पाँच साल की लड़कियों तक के बलात्कार करने की घटनाओं का उल्लेख है। वह भिखारिन लड़की भी इसकी शिकार होती है। बलात्कार करके उसकी भी हत्या की जाती है।

आज के इस ज़माने में छोटी-छोटी मासूम बच्चियाँ यौन उत्पीड़न के शिकार होते जा रहे हैं। दुनिया की कई जगहों में दिन-प्रतिदिन ऐसे घिनौनी हरकतें बढ़ रही हैं। यहाँ तक कि नन्हे बच्चों को भी दरिन्दे अपनी यौन तृप्ति के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। मानव अब इनसान से ज़्यादा हैवान बन गया है। अमोलक संपत चाचा से करता है कि - "अब पता चल रहा है कि न जाने कितनी लड़कियों ने इसलिए आत्महत्या की है क्योंकि उनके पास शरीर ढकने तक के कपड़े नहीं थे। कितनी लड़कियों ने अपने आप को इसलिए बेचा कि उनके पेट की भूख उनकी अंतड़ियों को खाने लगी थी। आदमी के अंदर जो इंसानियत नाम की चीज़ है न

---

1. अलका सरावगी - कलि कथा वाया बाइपास - पृ. 143

किशोर, उसे पेट की आग लील जाती है। पति के लिए पत्नी, पत्नी के लिए पति, संतानों के लिए बूढे माँ-बाप यहाँ तक कि माँ-बाप के लिए अपने बच्चे भी बिकाऊ चीज़ में बदल जाते हैं यदि उन्हें बेचने से पेट की भूख मिट सके।"[1] भूख में मनुष्य को अन्धा और पागल बनाने की शक्ति है। इसे मिटाने के लिए ही मनुष्य मेहनत करता है। संसार में ऐसा कोई मनुष्य या प्राणी नहीं जो इस भूख से बच सके। भूख मनुष्य को कुछ भी करने के लिए विवश कर देती है यहाँ तक कि इसके कारण मनुष्य मर भी जाता है। गरीबी चारों तरफ से मनुष्य के जीवन को दूभर बना देती है।

आज कल तो पैसों के लिए बच्चों को अपने ही माँ-बाप द्वारा बेच दिया जा रहा है। हाल ही में केरल में एक बाप ने अपने दोनों बच्चों को 3.25 लाख रुपयों के लिए विदेश में बेच डाला था। पुलिस के पूछताछ करने पर उसने बताया कि वह एक मामूली मज़दूर है, दो बीवियों में उसे 12 बच्चे हैं। बच्चों की देखभाल करने के लिए उसके पास पैसे नहीं हैं इसलिए उसने ऐसा किया। कुछ लोग तो बच्चों को खरीद कर उनके हाथ, नाक, कान, आँख इत्यादि अंगों के तोड़फोड़ कर उन्हें भीख माँगने के लिए सड़क पर छोड़ देते हैं और उनसे पैसा वसूल करते हैं। "यहाँ सड़कों पर 'मा गे एक टू फेन दाओ' (माँ, थोड़ा-सा भात का मांड ही दे दो) कहकर भीख मांगते सैकड़ों बच्चे, सड़क पर जगह-जगह पड़ी लाशे और अखबारों में गांवों में बच्चों को बेचने की खबरों के बावजूद अंग्रेज तो अंग्रेज बंगाल की मुस्लिम लोगों सरकार के खाद्य मंत्री सुहयवर्दी को यह घोषणा करने में महीनों का

---

1. अलका सरावगी - कलि कथा वाया बाईपास - पृ. 144

समय लगा है कि बंगाल में अभूतपूर्व अकाल पड़ा है। अभी तक सरकार यही कोशिश करती रही है कि कैसे सच को झूठ में या अर्द्ध सत्य में बदला जा सके - उसकी भयंकरता को कम करके दिखाया जा सके।"[1] यानी कि लावारिस बच्चों के लिए सरकार की तरफ से भी लापरवाही बढ़ती जा रही है। उनका शोषण किया जा रहा है, उन पर जुल्म किया जा रहा है, जिसके कारण उनकी मौत हो रही है। उन्हें अपना कर उनकी देख भाल करने के लिए कोई नहीं है। लेखिका इन सभी बातों की ओर इस उपन्यास के ज़रिए इशारा करती है।

एक बार किशोर का मन होता है कि वह उस नर्स से मिल आये जिसने उसके हार्ट के ऑपरेशन के समय उसका बड़ा ख्याल रखा था संयोग से उसे उसका पता भी मिल गया था। किशोर एक मिठाई का डिब्बा खरीद कर नर्स के घर पहुँचता है। वहाँ उसके घर के बाहर एक बुढ़िया बैठी थी। किशोर ने उस बुढ़िया से पुतूल नर्स के बारे में पूछा तो बूढ़ी पुतूल कहकर अन्दर की ओर इशारा करने लगी और फिर थोड़ी देर के बाद आकर कहती है कि वह घर पर नहीं है। किशोर को उसकी बातों पर यकीन नहीं आता तब बुढ़िया उससे कहती है कि आज उसने अपनी दोनों साड़ियाँ धो डाली इसलिए वह बाहर नहीं आ सकती "वह साफ-सुथरी चकाचक कपडोंवाली नर्स इतने गंदे मुहल्ले में रहती है और उसके पास दो ही साड़ियाँ हैं। 'बुढिया से मैंने नहीं पूछा कि उसके कितने बेटे-बेटियाँ हैं। ज़रूर ही दो-तीन होंगे और सबका खर्च पुतूल ही चलाती होगी। मैंने उसकी माँ को मिठाई का डिब्बा दिया और उलटे पैर लौट आया।"[2] दुनिया में ऐसे भी लोग हैं जो कि

---

1. अलका सरावगी - कलि कथा वाया बाइपास - पृ. 149
2. वही - पृ. 139

एक या दो कपडों से अपना गुज़ारा चलाते हैं। किशोर ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि वह नर्स बहुत गरीब होगी उसके पास पहनने के लिए सिर्फ दो ही दो कपड़े ही होंगे। आम जनता भूख के लिए, कपड़े के लिए, मकान के लिए संघर्ष कर रही है। लेखिका ने इस बात की ओर यहाँ ज़ोर दिया है।

4.1.3 बेरोज़गारी की समस्या

समय के अनुसार समाज में नयी-नयी समस्याएँ उद्‌भावित होती जा रही हैं। वैज्ञानिक प्रगति के कारण मृत्यु घटती गयी और उल्टे जनसंख्या में लगातार वृद्धि होती रही। फलस्वरूप देश में अनेक समस्याएं पैदा हुईं। उनमें बेकारी की समस्या ज़्यादा भीषण नज़र आती है। जीवन में बेकारी के मुख्य कारण हैं - जनसंख्या में निरंतर वृद्धि होना, सीमित भूमि, प्राकृतिक संसाधनों पर ही ग्रामीणों का आश्रित रहना, कुटीर-उद्योग-धंधों का अभाव तथा कृषि के प्रति लोगों की दिलचस्पी नष्ट होना आदि। अलका सरावगी का उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइपास' इन सब समस्याओं को दर्शाता है।

सामान्य जन समाज एक ओर जमींदारों और पूंजीपतियों के अत्याचार और शोषण का शिकार है तो दूसरी ओर गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी आदि से त्रस्त है। गरीबी चारों तरफ से मनुष्य के जीवन को दूभर बना देती है। जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण एक परिवार में केवल माँ या बाप की आमदनी से सभी की भूख मिटा पाना मुश्किल है। 'कलि-कथा वाया बाइपास' में ऐसा ही एक प्रसंग है।

किशोर बाबू के घर की नौकरानी अपने बच्चों की मूख मिटाने के लिए, उनके नंगेपन को ढकने के लिए चोरी करती है। किशोर बाबू की माँ मृत्यु शय्या पर थी तो माँ की सेवा शुश्रूषा करने के लिए एक नर्स आया करती थी। उसके लिए खाना पकाना किशोर की पत्नी को एक बड़ी समस्या लगती थी। क्योंकि वह मोटी-मोटी अठारह रोटियाँ खा जाती थी। उन दिनों किशोर बाबू के घर के नौकर छुट्टी पर गये हुए थे तो रोटियाँ किशोर की पत्नी को ही बनानी पड़ती थी। इस बात से थककर वह किशोर बाबू को सलाह देती थी कि नर्स को बदल देना अच्छा रहेगा। एक दिन सुबह आठ बजे रात को नर्स घर जा रही थी तो किशोर बाबू उस नर्स की थैली की तलाशी लेता है। तब उसमें से आठ-दस रोटियाँ नीचे पड़ती है। यह देखकर किशोर उस नर्स पर खूब चिल्लाता है। फिर जाकर किशोर और उसकी पत्नी को यह मालूम होता है कि वह खुद के लिए नहीं बल्कि अपने बच्चों के लिए रोटियाँ चुराकर ले जाया करती थी तो किशोर ओर उसकी पत्नी का दिल पिघल जाता है। वह भगवान से क्षमा माँगकर प्रार्थना करती है कि - "हे भगवान! हमें माफ कर दो। इस अपराध का दंड मेरे बच्चों को मत दो। माफ कर दो इस बार हमें।"[1] यानी भूख ही मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या है। भूख से मनुष्य समझौता करने को मजबूर होता है। वह मनुष्य को अंधा बना देती है। इस प्रकार अलका सरावगी ने अपने इस उपन्यास में आम जनता की रोटी, कपड़ा, मकान जैसे सबसे बड़ी बुनियादी समस्या और उनके ऊपर हो रहे शोषण की ओर भी इशारा किया है।

---

1. अलका सरावगी - कलि कथा वाया बाइपास - पृ. 140

4.1.4 सांप्रदायिकता

भारतवर्ष के लिए सांप्रदायिक समस्या कोई नई चीज़ नहीं है। भारतीय समाज में यह समस्या लंबे समय से मौजूद है। सत्ताधारियों ने अपने अधिकार को बनाये रखने के लिए एक हथियार के रूप में सांप्रदायिकता का इस्तेमाल किया। आज यह हमारे देश में भयानक रूप, धारण कर जनता की शान्ति को भंग कर रही है। 1947 में भारत को अंग्रेज़ों के शासन से मुक्ति तो मिली लेकिन जाते-जाते भारत में साम्प्रदायिकता का विष फैलाने वे लोग कामियाब निकले। वर्षों से मित्रों की भांति निवास करने वाली दो जातियाँ धार्मिक अनुदारता, पारस्परिक वैमनस्य और अविश्वास के कारण धीरे-धीरे एक दूसरे के शत्रु बन गये और इनकी शत्रुता ने एक अखण्ड भू भाग को टुकडा कर डाला। देश की स्वतंत्रता के लिए हमने बहुत अधिक प्रयत्न किया था। उसे पाने के लिए हमें उन सब उपलब्धियों की बलि देनी पड़ी जो स्वाधीनता संग्राम के दीर्घकालीन अनुशासन, तप और त्याग से मिली थी। एकता हमारे स्वाधीनता संघर्ष की धुरी थी, किन्तु देश विभाजन से एकता की नींव हिल गयी। अहिंसा हमारा मूल-मंत्र था, किन्तु विभाजन के फलस्वरूप देश में हिंसा का ऐसा भयानक नृत्य हुआ कि शैतान की क्रूरता भी उसके सामने फीकी पड गई। दोनों संप्रदायों के पारस्परिक वैमनस्य और घृणा की आग के कारण विभाजन के उपरान्त मनुष्य की मानवता के अकल्पनीय दृश्य देखने में आये। देश में सांप्रदायिक दंगों की जो आग भड़की, उसके कारण लाखों निर्दोष निरूपाय मनुष्य मृत्यु के शिकार बने और लाखों को बेघर होना पड़ा। इस सन्दर्भ में डॉ. शशिभूषण सिंहल लिखते हैं कि "विभाजक दृष्टि ने भारत में पाकिस्तान के स्वतंत्र अस्तित्व

का स्वप्न देखा तथा अंततः उसे पाकर दम लिया। भारत विभाजन के समय जो सांप्रदायिक दंगे और हत्याकांड हुए उसकी कटुता आज तक किसी न किसी रूप में बनी हुई है। फलतः लगता है हिंदू-मुस्लिम भेद की समस्या एकबारगी हल नहीं हो गई, वरन् मूलतः अधपके फोड़े के समान पुनः पक रही है, और आशंका है कि आगे चलकर लाइलाज कैंसर जैसी बनकर देश को नए सिरे से चुनौती न देने लगे।"[1] यानी विभिन्न धर्मों के साम्प्रदायिक झगड़े दिन-प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे हैं जिसके कारण मानव अपना मूल धर्म (दायित्व) भूलता जा रहा है। साम्प्रदायिक उन्माद के कारण युगों से स्वीकृत मानवीय मूल्यों का अभूतपूर्व ह्रास हुआ।

साम्प्रदायिक झगड़ों को लेकर आज भारत का भविष्य धुँधला पड़ने लगा है। इस समस्या के हल के लिए प्रभावित संवेदनशील लेखकों ने अपनी लेखनी चलायी। उन्होंने साम्प्रदायिक झगड़ों के यथार्थ विश्लेषण करके समाज को सोचने के लिए मजबूर कर दिया। इनमें से कुछ ऐसे भी साहित्यकार हैं जिन्होंने हिन्दू/मुस्लिम इन दो धर्मावलंबियों के आपसी सद्भावनापूर्ण आपसी व्यवहार को चित्रित किया है। अलग-अलग धर्म का अनुसरण करने वाले, मानवधर्म को प्रधानता देते हैं। धर्म के सच्चे अर्थ को समझकर अन्य धर्म के मनुष्य के साथ भी धार्मिक चेतना फैलानेवालों में अलका सरावगी और महुआ माजी जैसी लेखिकाओं की भी गिनती होती है। इन्होंने अपने-अपने उपन्यासों में साम्प्रदायिक सद्भाव के मज़बूत इतिहास को पेश किया है।

---

1. शशिभूषण सिंहल - भारतीय स्वतंत्रता और हिन्दी उपन्यास - पृ. 22

जब देश का बँटवारा हुआ था तब हिंसा की बड़ी आँधी चल रही थी। सच्चा धर्म मानव धर्म है, जो भेदभाव को नहीं मानता। अलका सरावगी ने अपने उपन्यास 'कलि कथा वाया बाईपास' में मानव धर्म के प्रति आस्था व्यक्त की। उन्होंने इस दृष्टि से उपन्यास में नया प्रयोग किया है। इस उपन्यास में लेखिका ने सिर्फ साम्प्रदायिकता का विरोध ही नहीं किया बल्कि उसका सकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। समस्या प्रस्तुत करना कोई बात नहीं है। श्रेष्ठ साहित्यकार समस्या के निवारणार्थ स्वस्थ दृष्टि भी पाठकों के सामने रखता है, यह महत्वपूर्ण कर्म है, जिसे करने का साहस अलका सरावगी ने किया है। उनका उपन्यास 'कलि-कथा वाया बाइपास' सांप्रदायिक दंगों का यथार्थ वर्णन करता है। उपन्यास में एक जगह किशोर बाबू से उसकी माँ कहती है कि "जैसे हिंदू है वैसे ही मुसलमान। हिंदू अपने धर्म का पाबंद है, मुसलमान अपने धर्म का। बचपन में एक बार किशोर बहुत बीमार पड़ गया था, तब नाखुदा मस्जिद के बाहर बैठे रहनेवाले एक फकीर की दुआ और फूंक से ही ठीक हुआ था। माँ कहती है - "तेरा जीवन उस फकीर की अमानत है। मुसलमान अपने धर्म के जितने पक्के है, उतने तो हिंदू है ही नहीं। महीने भर रोजा रखते हैं। उनसे हमारी लड़ाई कैसी?"[1] मानव जीवन तथा स्वभाव पर बेहद प्रभाव डालने वाला तत्व है धर्म। आम तौर पर भारतीय धार्मिक रीति-रिवाजों के पालन में निष्ठावान है। भारत में अनेक धर्मों के लोग रहते हैं। धर्म के नाम पर मानव-मानव के बीच हुई रक्त-रंजित नृशंसताओं को कोई भूल नहीं सकता।

---

1. अलका सरावगी - कलि कथा वाया बाइपास - पृ. 94

भारतवर्ष में साम्प्रदायिक नेताओं की स्वार्थ एवं संकीर्ण दृष्टि के कारण हिन्दू-मुसलमानों में घोर रक्तपात होने लगा। धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक पृथकता की भावना और धार्मिक नेताओं द्वारा समर्थन-प्राप्त जाति-भेद की भावना विषैले रूप में हमारे वर्तमान सामाजिक जीवन में व्याप्त है। अलका सरावगी के इस उपन्यास में साम्प्रदायिक दंगों का यथार्थ वर्णन हुआ है। उपन्यास में हिन्दू-मुसलमान दंगे के वक्त अमोलक चौरंगी से पैदल बड़ा-बाजार चला जा रहा था। उस वक्त कुछ हिन्दू लोग अमोलक को यह समझकर पकड़ लेते हैं कि वह मुसलमान है। तीन-चार लोग मिलकर अमोलक की पैंट खोलते हैं। बचपन में पेशाब करने में असुविधा होने पर उसकी इंद्रीय की चमड़ी हटाने का औपरेशन हुआ था। वह भी कटवा लिया है कहकर चाकू खोल दिया गया तभी एक मुसलमान कहता है कि अमोलक हिन्दू है। उसका बाप रामरिख पोद्दर है और वह कांग्रेज का लीडर है। यह सुनकर वे लोग अमोलक को छोड देते हैं, लेकिन अमोलक की जान बचाने वाला उस मुसलमान को मार दिया जाता है। उपन्यास में हिन्दू-मुसलमान साम्प्रदायिक दंगों की घटनाओं के पढ़कर पाठकों का मन कांप उठता है - "सोलह अगस्त की रात को पुलिस ने कर्फ्यू लगा दिया था। लेकिन रात भर कभी 'अल्लाह-हो-अकबर' और कभी 'हर-हर महादेव' की आवाजें सुनाई पड़ रही थीं। किशोर आंख बंद करता, तो कभी उसे हर जगह आग लगी हुई दिखाई पड़ती, कभी भाला-लाठी लेकर कोई आदमी उस पर हमला करता दिखाई देता। जरा-सा भी खटका होता तो सबके दिल धड़कने लगते। रात को कई बार दमकल के आने-जाने की घंटी सुनाई पड़ी। अगले दिन खिड़की की झिर्री से किशोर ने जो दृश्य देखा, उसके बाद उसे

बार-बार उबकाइयाँ आने लगी थीं। कहीं से एक तेरह-चौदहह साल का हिंदू लड़का न जाने क्या करने घर से निकल आया था। मुसलमान गुंडों ने तुरंत उसे दबोच लिया और वहीं ट्राम लाइन पर छुरे से जिबह कर डाला। उसके पेट से खून के फव्वाई छूट रहे थे।"[1] धर्म के नाम पर राक्षसी कर्म करनेवालों के आचरण से धर्म घृणा की वस्तु बनने लगता है। अलका सरावगी अपने इस उपन्यास के ज़रिए पाठकों को धर्म का असली अर्थ समझाने का प्रयास करती है। साथ ही धर्म के नाम पर निरीह लोगों की श्रद्धा और भक्ति का नाजायज फायदा उठानेवाले अधार्मिक, धार्मिक-नेताओं का पर्दाफाश भी लेखिका करती है।

महुआ माजी ने अपना उपन्यास 'मैं बोरिशाइल्ला' के माध्यम से यह बताने की कोशिश की है कि आज धर्म के नाम पर जो दंगे-फसाद हो रहे हैं वह वास्तव में धर्म की लड़ाई है ही नहीं। आर्थिक लाभ के लिए, सत्ता और वर्चस्व के लिए कुछ स्वार्थी तत्व ही हमेशा धर्म का मुखौटा पहनकर आम लोगों को गुमराह करते हैं। अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय न हो, इस उद्देश्य से पाकिस्तान बना था। परंतु धर्म अलग होने के कारण भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप में भी बदलाव आया। 'मैं बोरिशाइल्ला' धर्म, संस्कृति व सत्ता का त्रिकोण रचता है। यह उपन्यास सिर्फ पाकिस्तान तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि धर्मान्धता की उन जड़ों तक भी पहुँचता है जहाँ से विभाजन की मानसिकता बनी। उपन्यास सिर्फ 'मुस्लिम लीग या जिन्ना को ही दोषी नहीं ठहराता। यह हिन्दू-राष्ट्र की कल्पना करने वालों को भी कटघरे

---

1. अलका सरावगी - कलि कथा वाया बाइपास - पृ. 169

में खड़ा करता है - "मैं मानता हूँ कि जिन्ना जैसे लोग देश का बंटवारा करके पाकिस्तान बनाना चाहते हैं, पूरे बंगाल को पाकिस्तान में शामिल भी करना चाहते हैं लेकिन कांग्रस के बी.सी. सिन्हा, हिंदू महासभा के श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे कई बड़े नेताओं को भी कुछ हद तक इन बातों के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है।"[1] वास्तव में धर्म को सत्ता के लिए हथियार बनाया गया। यह सिलसिला आज भी जारी है। धर्म के नाम पर ही पूरे विश्व में तबाही मची थीं।

धर्म एक आस्था व संस्कृति की वाहिका होने के साथ ही पहचान का भी सूचक है। धर्म के नारे लगाकर उसका फायदा उठानेवाले वर्तमान सत्ताधारी अपने स्वार्थ की पूर्ति इसके द्वारा करते हैं। धर्म के नाम पर लड़ने वाले और मरनेवाले हमेशा साधारण जनता ही होती है। अलका सरावगी और महुआमाजी जैसे साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के ज़रिए यह बताना चाहा है कि हमें धर्म का अन्धानुकरण न करना चाहिए क्योंकि यह हमारे आनेवाले सुनहरे भविष्य को नष्ट कर देगा अर्थात् अंधेरे में डाल देगा।

4.1.5 भूमंडलीकरण, विज्ञापन, बाज़ार और विचारधारा

भूमण्डलीकरण पूँजीवादी व्यवस्था का अत्यन्त आधुनिक एवं विस्तृत रूप है। इस व्यवस्था की नीतियाँ केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित न रह कर सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों तक व्याप्त है। दरअसल यह व्यवस्था विकसित देशों को

---

1. महुआ माजी - मैं बोरिशाइल्ला - पृ. 339

विकासशील एवं गरीब देशों को लूटने का एक कारगर ज़रिया है। यह आर्थिक उदारीकरण-प्रक्रिया को लागू करने के लिए गरीब देशों की सरकारों पर दबाव डालता है।

भूमण्डलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया पिछले दो तीन दशकों से दुनिया में तमाम विकासशील देशों में अलग-अलग पैमानों पर कार्यान्वित की जा रही है। आम जनता भूमण्डलीकरण का शिकार बनती आ रही है। हमारे कुछ नेता लोग इन लोगों के वश में है। वे लोग स्वार्थवश कार्य कर रहे हैं। इसी वजह से भूमण्डलीकरण का सबसे बड़ा असर गाँवों पर पड़ता है। भारत एक किसानी देश है। किसानी क्षेत्र ज़्यादातर गाँव में ही है। वहाँ के लोग अनपढ़ होने के कारण उनका शोषण करना सबसे आसान कार्य है। गाँव और शहर के लोगों की तुलना में यह देखा जा सकता है कि गाँव के लोग प्रतिक्रिया विहीन है। अमेरिका जैसे विकसित राज्यों ने इसका फायदा उठाया है। वे स्वार्थ के कारण कुछ भी करने को तैयार होते हैं। कोकोकोला कंपनी की स्थापना के पश्चात् पानी के अकाल से गाँव के लोग पीडित हो गये हैं। भूगर्भ का पानी सब, कंपनी में कोकोकोला बनाने के लिए इस्तेमाल किया गया। इसलिए पेड़-पौधे पानी के बिना सूखने लगे। अलका सरावगी का उपन्यास एक ब्रेक के बाद में के.वी. की पत्नी के.वी से कहती है कि "टी.वी पर रामदेव बाबा कह रहा था कि कोकाकोला से कमोड साफ करो। हारपिक से सस्ता और ज़्यादा कारगर है। ऊपर से फायदा यह कि बच्चे कोकाकोला पीना छोड़ देंगे।"[1] भारत के लोग कोकोकोला पीकर बीमार

---

1. अलका सरावगी - एक ब्रेक के बाद - पृ. 16

हो जाते हैं। लेकिन अमेरिका जैसे राष्ट्रों में यह पीने के बाद की बीमारी का इलाज करने के लिए हाइटेक सुविधा है। लेकिन भारत जैसे गरीब देशों में इसके लिए कोई सुविधा नहीं।

विज्ञापन हमारे अर्थव्यवस्था की प्राण वायु है। साधारण जनता इसके जाल में आकृष्ट होकर फंस जाती है। विज्ञापन उपभोक्ता और उपभोक्तावाद का हवा पानी देता है। इसका प्रभाव सिर्फ खरीददार पर ही नहीं बल्कि उन पर भी पड़ता है जो उससे संबन्धित वस्तु को नहीं खरीदते। विज्ञापन उपभोक्ता से लेकर प्रशासन के नीति निर्धारकों तक को प्रभावित करता है। यह सुन्दर, आकर्षक होकर ज़्यादातर माल की बिक्री में ध्यान देता है। आज के इस भाग दौड़ भरी जिन्दगी में सब विज्ञापन के पीछे भागते हैं। "इंडिया के बीस करोड़ घरों में से करीब साढ़े सोलह करोड़ घरों के अंदर हिन्दुस्तान लीवर कुछ-न-कुछ छोटा मोटा सामान जैसे कि तेल या साबुन लेकर घुसा हुआ है। चोरड़िया का प्रेशरकुकर एक दिन इन करोड़ों घरों में आलू-दाल-चावल उबाल रहा होगा। अभी तो इंडिया में संयुक्त परिवार टूटकर न जाने कितने और करोड़ चौके-चूल्हें बन जाएँगे। यानी मार्केट फैलता जा रहा है और लोगों के खरीदने की ताकत भी।"[1] यानी आज विज्ञापन जनता को विभिन्न रूपों में प्रभावित करता आ रहा है। यह असल में हमारे अन्दर छिपे उत्तेजक व्यक्ति को जगाता है।

---

1. अलका सरावगी - एक ब्रेक के बाद - पृ. 14

फैशन विज्ञापन के बिना नहीं रहता। नए को पुराना और पुराने को नया बनाने का काम विज्ञापन बड़े कौशल के साथ करता है। इसके लिए 'पब्लिक' एक महत्वपूर्ण कैटेगरी है। विज्ञापन का सारा रसायन इसके इर्दगिर्द तैयार होता है।

बाज़ार की रंगीली दुनिया के प्रति समाज का हर व्यक्ति आकृष्ट है। बाजार चाहे जितना भी वर्गीय, श्रेणी का हो उसमें कमज़ोर तथा गरीब निरंतर हाशियेकरण की नियति के लिए अभिशप्त है। ब्रिटीश राज्य ने वाणिज्य के नाम पर अपना अधिकार भारत में स्थापित किया था। उसका लक्ष्य यहाँ की संपत्ति को लूटना था। यानी अंग्रेजों के आगमन के पीछे उनकी बाज़ारी आँख कार्यरत थी। आज उसका विकसित रूप हम देख सकते हैं। व्यापार व्यवस्था आज कल माँग के आधार पर नहीं चल रही है। चीज़ों को उपलब्ध कराये जाने वाले पुराने बाज़ार तंत्र बुनियादी तौर पर बदल गए हैं। अब निर्माता विज्ञापन के सभी नवीन माध्यमों के ज़रिए समाज में ऐसी मानसिकता पैदा कर देते हैं कि लोग ज़रूरी चीज़ों के माँगने के बजाय ऐसी चीज़े खरीदने लगे हैं जिनका हासिल होने पर खरीदार को लगता है कि उनकी शान शौकत बढ़ गयी है। मतलब आज शान, शौकत; हैसियत व रोब का आधार कीमती चीजें खरीदने की क्षमता ही है। इसलिए आज उपभोक्ता भगवान कहा जाता है। विकसित देश अपनी चीज़ों को, जो सस्ते दाम का होगा, बिकने के लिए बाज़ार को उपयुक्त बनाता है। भारत जैसे गरीब देश इसका शिकार बन गया है। अलका सरावगी अपने उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में बाज़ारवाद के ज़रिए कुछ मानवीय मूल्यों को उभारने की कोशिश करती है। यह उपन्यास समसामयिक कार्पोरेट जगत को कथावस्तु का आधार बनाकर कार्पोरेट जगत की वैचारिकता

और धोखाधड़ी को प्रस्तुत करता है। उपन्यास में के.वी, गुरुचरण उर्फ़ गुरु और भट्ट ऐसे चरित्र हैं, जो ग्लोबलाइज़ेशन के इस समय में ग्लोबल सपनों को बेचते हैं। यह सपने मध्यवर्गीय समाज पर हावी रहता है। इन चरित्रों के माध्यम से लेखिका भूमंडलीकरण के दौर में बाज़ार विज्ञापन और वस्तु के रूप में व्यक्ति को भी उपयोगितावादी दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करती है।

वर्तमान बाज़ारवादी व्यूह रचनाएं किस प्रकार भारतीय जनता की जीवनशैली में परिवर्तन लाती हैं, इस बात पर अलका सरावगी ने प्रकाश डाला है। "इस पोस्ट-ग्लोबल दुनिया में जवान दिखना, सुंदर दिखना, वजन घटाना अरबों डॉलरों का कारोबार है। लेकिन कम-से-कम इंडिया में ज्यादातर लोग यह नहीं चाहेंगे कि किसी को पता चले कि वे इस तरह के कामों के लिए पैसे खर्च कर रहे हैं।"[1] अलका सरावगी ने कार्पोरेट वर्ल्ड के विषय-वस्तु के आधार बनाते हुए व्यक्ति के सपने, जिज्ञासा, भ्रम और मानव-मन की उलझनों को सही दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। बाज़ार एक तरफ सामान्य व्यक्ति को सपने दिखाता है, जिसको पूरा करना उसके लिए कठिन है, फिर भी वह उसे पूरा करने की दौड़ में लग जाता है। वही दूसरी तरफ़ बाज़ारवाद व्यक्ति को केवल एक वस्तु के रूप में देखता है, जो मात्र अपना उत्पाद बेचने से मतलब रखता है। मानवीय संवेदना किस प्रकार वस्तुवादी दृष्टि में परिवर्तित हो रही है, उसका एक दस्तावेज़ बनकर यह उपन्यास पाठक के सामने आता है।

---

1. अलका सरावगी - एक ब्रेक के बाद - पृ. 119

निष्कर्षतः अपनी रचनाओं के माध्यम से समकालीन समस्याओं की सही झलक पाठकों को देने में अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी सफल हुई है। आम जनता कभी-कभार संसार के एक कोने में खड़े होकर भी कुछ समस्याओं से अज्ञात रहती है। ये लेखिकायें इन्हीं समस्याओं का बोध पाठकों को कराने और इन मसलों को समझाकर उन्हें अपनी रचनाओं के ज़रिए पाठकों को सोचने के लिए प्रेरित करती हैं।

पाँचवाँ अध्याय

अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में चित्रित अन्य समस्याएँ

पाँचवाँ अध्याय
अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी के कथा साहित्य में चित्रित अन्य समस्याएँ

वर्तमान समाज और जीवन बहुत ही जटिल एवं संकीर्ण है। इसका प्रमुख कारण बढ़ती आ रही सामाजिक समस्याएँ ही हैं। पुराने समय से बिल्कुल भिन्न वर्तमान औपनिवेशिक समाज में व्यक्ति को बहुत सारे मानसिक पीड़ाओं को सहना पड़ रहा है जिससे समाज बिल्कुल वाकिफ नहीं। हाशिएकृत समाज, विकलांग बच्चों की मानसिक व शारीरिक स्थिति वैयक्तिक सम्बन्ध, निराशा एवं मजबूरी, अकेलापन, बुढ़ापे की समस्या और मृत्युबोध आदि आज के मानव को गहरा दुःख प्रदान करनेवाली भावनाएँ हैं। वर्तमान लेखिकाओं ने ऐसी सामाजिक समस्याओं पर विचार किया है। यानी मुख्य रूप से नारी जीवन को उभारनेवाली इन लेखिकाओं ने मनुष्य जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं को भी पकड़ने की कोशिश भी की है।

आज हमारे देश के लिए ही नहीं, विश्व-भर के लिए पर्यावरण की समस्या एक चुनौती बन गयी है। प्रदूषण तथा नष्ट होता पारिस्थितिक संतुलन सभी जीव-जंतुओं तथा मानव को धीरे-धीरे खत्म कर रहे हैं, खासकर 'आदिवासियों' को। आदिवासी समुदाय, जिसने अपनी मेहनत से जंगलों में खेती करने लायक ज़मीन बनाया था, आज उनका भयानक दमन तथा शोषण हो रहा है। अपने दमन के

खिलाफ आदिवासियों को आज़ादी की दूसरी लड़ाई लड़ने और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष करने की नौबत आ गयी है। अपने ही घर में बेगाना आदिवासी, जंगलों के कट जाने से अल्पसंख्यक बनता आ रहा है।

आदिवासी लोग जंगलों में युगों से रहते आए हैं और जंगल के उत्पादों से ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। वे प्रकृति से अपना निकट संबन्ध स्थापित करते हैं तथा उसके प्रति प्रेम भी, इसी कारण आदिवासी संस्कृति अन्य संस्कृतियों से अलग दिखाई देती है। आदिवासी संस्कृति में मानव जीवन बिल्कुल सादा और सामान्य है। आदिवासियों का जीवन जंगल पर आधारित होने के कारण उनके खान-पान में अधिकतर वनोपज, फल-फूल, जानवरों का दूध, मांस, खेती में उगाया गया अनाज, हाडियाँ, महुए की शराब आदि का प्रयोग किया जाता है। अतः उनका खान-पान आधुनिक समाज से पृथक है। वे पूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर रहते हैं। लेकिन आज आदिवासियों को अपनी भूमि से विस्थापित होना पड़ता है। उन्हें अपनी जलवायु से बिछुडना पड़ता है। इस सन्दर्भ में रमणिका गुप्ता का कथन उल्लेखनीय है। वे कहती हैं - "आज तक आदिवासी अपने शोषण का मूक दर्शक बना रहा है। महाजन, ठेकेदार, दलाल, दिकू, राजा, नवाब या 'सभ्य लोग' - सब उसके जंगलों को और उसकी औरतों को लूटते रहे हैं। उसका रोजगार छीनते रहते हैं। विस्थापन उसकी जिन्दगी का दर्द बन गया है। आज़ादी के बाद देश के विकास का हर कार्यक्रम आदिवासी की कीमत पर हुआ है। विकास की कीमत वह अपने विस्थापन से अदा करता रहा है। उसके खेत खदानों में बदल गए और जंगल लकड़ी की टालों में समा गए या कुर्सियों, मेजों और फर्नीचरों में बदल गए।"[1] पैसे

और शराब की सबजबाग दिखावत् आदिवासियों को जबरन उनकी भूमि से बेदखल कर दिया जा रहा है।

शिकार करना, मछली पकड़ना और वनोत्पादन इकट्ठा करना आदि प्रकृति से मेल खाने वाली जीवन पद्धतियाँ हैं, उनका परम्परागत व्यवसाय ही है। जंगलों के कटने और उनमें बसने वाले आदिवासियों की ज़मीन, गैर आदिवासियों के द्वारा कब्जा करने के कारण जंगलों का क्षेत्रफल लगातार घटता जा रहा है। जिससे उनके ये वन आधारित रोजगार खत्म हो रहे हैं। सरकार की तरफ से भी आदिवासी भूमि के मामले में उपेक्षा का व्यवहार ही अपनाया जा रहा है। सरकार की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि वह आदिवासियों की रक्षा करे और उन्हें सम्मानित मानव जीवन जीने हेतु सभी सुख-सुविधाएँ दें। इन सभी बुनियादी मुद्दों को हिन्दी की युवा लेखिका महुआ माजी ने अपने नये उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में प्रस्तुत किया है। विकिरण, प्रदूषण व विस्थापन से जूझते आदिवासियों की गाथा प्रस्तुत करने वाला यह उपन्यास प्रकृति और विषय-वस्तु के स्तर पर ही नहीं बल्कि विश्लेषण की दृष्टि से भी विशिष्ट है। युरेनियम की खदानों के हिस्से में रहने वाले आदिवासियों का जीवन, उनके संघर्ष, उनकी मान्यताएँ, विश्वास, जीवन-पद्धति, जंगल से उनके रिश्ते और युरेनियम की खदान से आदिवासियों के स्वास्थ्य पर पड़े दुष्प्रभाव और प्रभावित होती पीढ़ियों जैसे कई आयामों पर यह उपन्यास प्रश्न करता है। "विकिरण, प्रदूषण और विस्थापन से जूझ रही पीढ़ियाँ

---

1. रमणिका गुप्ता - आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी - पृ. 10, 11

इस उपन्यास में अपना प्रभाव तो दिखाती रही हैं साथ में पाठकों की सोई आत्मा को जगाने की कोशिश करती हैं। लेखिका विस्थापितों के दर्द को और विकिरण से अपंग होते लोगों को शिद्दत से इस उपन्यास में सामने लाती हैं।"[1] शुद्ध समृद्ध 'मरंग गोड़ा' युरेनियम की खदान से विषैला हो जाता है इसका परिणाम सबसे पहले आदिवासियों पर फिर संपूर्ण विश्व पर किस प्रकार पड़ता है इसका खुलासा प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है।

उपन्यास का केन्द्रीय पात्र सगेन है। उसके ततंग (दादाजी) जाम्बीरा ने बड़े प्यार से उसका नाम रखा था सगेन यानी फुनगी। टहनी के ऊपर निकल आई नयी कोमल पत्तियों वाली फुनगी। अपने वंश को बढ़ाने वाला सगेन। आदिवासी लोग प्रकृति के इतने करीब होते हैं कि यहाँ तक कि वे अपना नाम भी प्रकृति से जुड़ा हुआ ही रखते हैं। उपन्यास में मरंग गोड़ा में वसित आदिवासी इस बात से बिल्कुल अनजान थे कि उनका अपना जंगल खदानों का इलाका हो गया है। "पर्यावरण में विभिन्न प्रकार के प्रदूषण उत्पन्न करने की कार्रवाइयाँ हमारे विभिन्न क्रियाकलापों के माध्यम से होती हैं। भूमि प्रदूषण विनाश के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। उसमें खनिज प्राप्ति के लिए विशिष्ट पर्यावरणीय महत्व के स्थानों का खनन या अन्य प्राकृतिक तत्वों की प्राकृतिक देन के विपरीत प्रयोग करने के, संचित करने के साधनों और उसका एक से अधिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग का लक्ष्य भी

---

1. हंस - जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक, वर्ष 27, अंक 4 2012 (सं) राजेन्द्र यादव परख मानवीय सरोकारों का शेक-पत्र - अमरेंद्र किशोर - पृ. 76

हमारी भूमुदा को उसके तत्वों से वंचित करके नष्ट कर रहा है।"[1] यूरेनियम की खदानों से जो रेडियोधर्मी प्रदूषण फैल रहा है, उसका दुष्प्रभाव संपूर्ण मानवराशी को भुगतना पड़ता है और वह द्वितीय विश्वयुद्ध में हिरोशिमा तथा नागसाकी पर गिराए परमाणु बमों के दुष्परिणामों से भी कई गुना शक्तिशाली है। इससे उनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ियाँ विकलांग बच्चों को पैदा कर रही हैं।

उपन्यास के प्रारम्भ में 'मरंगगोड़ा' और सारड़ा के घने जंगलों और हसीन वादियों का वर्णन है। जाम्बीरा वहाँ के जंगल में रहने वाले आदिवासियों का प्रतिनिधित्व करता है। जाम्बीरा के ज़रिए लेखिका आदिवासी जीवन, उनका रहन-सहन, आचार-विचार, भाषा, पर्व-त्योहार आदि से गुज़रती है तो दूसरी ओर जाम्बीरा का पोता सगेन के ज़रिए अंधविश्वास, खदान, प्रदूषण, विकिरण और विस्थापन से जूझते आदिवासियों की समस्याओं का विवरण भी देती है। सगेन, फिल्म बनाने वाले पत्रकार आदित्यश्री की मदद से जापान जैसी कई जगहों में जाकर वहाँ की पूरी जनता को युरेनियम के खतरों से अवगत कराता है। इस कठिन परिश्रम में कई अच्छे लोग उसका साथ देते हैं। सगेन युरेनियम कंपनी ऑफ मरंग गोड़ा के खिलाफ आन्दोलन चला रहा था। उसके इशारे पर मरंग गोड़ा में ग्रामीणों द्वारा धरना, प्रदर्शन और गिरफ्ती का सिसलिला जारी था। इस आन्दोलन में स्त्रियों का सहयोग भी कुछ कम नहीं था "लाल पाड़ वाली सफेद साड़ी में औरतें। पीले रंग का साफा बांधे पुरुष। औरतों के हाथ में बेलन, झाड़ू, कलछुल,

---

1. लता जोशी - पर्यावरण की राजनीति - पृ. 79

कटारी जैसे घरेलू अस्त्र। पुरुषों के हाथ में तीर धनुष, लाठी, डंडा। ढोल, नगाड़ा, मांदर भी! वे उन्हें बजा रहे हैं..... नाच रहे हैं..... नारे लगा रहे हैं....."[1] इस प्रकार देखें तो उपन्यास के अंत तक आते-आते सगेन और आदित्यश्री के ज़रिए वहाँ के आदिवासियों को युरेनियम खदानों के खिलाफ आवाज उठाने का हौसला भी मिल जाता है। उपन्यास में एक जगह आदित्यश्री आदिवासियों के बारे में कहता है - "कितने अच्छे विचार है उनके प्रकृति के साथ..... पशु पक्षियों के साथ तालमेल रखकर जीने की कला तो आदिवासियों के पास ही है। हमें उनसे बहुत कुछ सीखने की ज़रूरत है। तभी इस धरती की रक्षा हो सकती है।"[2] यानी कि आज कल बड़े पैमाने पर विकास के नाम पर विनाश का सिलसिला ज़ारी है जिसके कारण प्रकृति और मानव के बीच की दूरी प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। इसलिए मानव को वापिस प्रकृति के आंगन की ओर जाना ज़रूरी है ताकि वह प्रकृति के विषय में गहन चिंतन और मनन कर सके और अपने अस्तित्व को बचा सके।

उपन्यास में बड़े पैमाने पर प्रकृति को एक विशाल कैनवास में 'फ्रीज़' करके रखा गया है। कुदरत के हैरतंगेज कारनामों को दिखाया गया है। साकुरा और महुआ के फूल की गंध से पाठकों का दिल भर उठता है। डिंग-डिसिग, डिंग-डिसिग, चांग-चांग, हुतुर-लां टोंगा आ : सर आदि टाइटिलों से लेखिका ने अपने इस उपन्यास को और भी रोचक बना दिया है। सगेन और उसके तंग के जीवन के

---

1. महुआ माजी - मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ - पृ. 169
2. वही - पृ. 290

इर्दगिर्द बुने गए इस उपन्यास की कथा में आदिवासी विस्थापन की राजनीति, विकिरण और उससे जूझते आदिवासियों में फैलाए जाने वाले अन्धविश्वास जैसे मुद्दों को उपन्यास में समेटा गया है। इसके साथ-साथ आदिवासियों के जीवन, प्रकृति के साथ उनका रिश्ता, रीति-रिवाज़ व मान्यताएँ, उनकी समस्याएँ और जीवन पद्धति जैसे बेहद ज़रूरी मुद्दों को लेखिका महुआमाजी ने एक सूत्र में पिरोया है।

संक्षेप में कहा जाए तो आदिवासी ही जल-जंगल एवं ज़मीन के संतुलन को बनाए रखते हैं। प्रकृति से उनका सम्बन्ध अटूट है। वे प्रकृति पर बिना कोई नुकसान पहुँचाए पूर्ण रूप से उस पर निर्भर रहते हैं। हमें प्रकृति को सिर्फ आर्थिक लाभ के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि मनुष्य और प्रकृति के समन्वय के दृष्टिकोण से देखना चाहिए। तभी हम पर्यावरण असन्तुलन, चतुर्मुखी प्रदूषण जैसी खतरनाक समस्याओं से मुक्त हो सकते हैं और तभी हम अपने अस्तित्व की कल्पना कर सकते हैं। जापान के शहर हिरोशिमा में, जहाँ आज से वर्षों पहले परमाणु बमों की विध्वंसकारी प्रयोग से हज़ारों लोगों की मौत हो गयी थी, उस भयावह घटना को एक बार फिर से हमारी आखों के सामने लाने और जंगलों के नाश की वजह से आदिवासियों की बिखरी संस्कृति, उनके विस्थापन का दर्द आदि को बयान करने में लेखिका सक्षम हुई हैं। साथ ही साथ पाठकों को यह सन्देश देती है कि युरेनियम को धरती के भीतर ही पड़े रहने दे। उसे मत छेड़ो। वरना साँप की तरह वह हम सबको डस लेगा।

5.1.1 निराशा और विवशता

मनुष्य जब इच्छाओं को पूरा नहीं कर पाता तो अपने उद्देश्य की पूर्ति से विवश होकर निराशा और विवशता का अनुभव करने लगता है। निराशा और विवशता के कारण कई हो सकते हैं परन्तु उसका परिणाम केवल तनाव, दुख तथा कुंठा है।

अलका सरावगी ने अपने उपन्यास 'कोई बात नहीं' में शशांक नामक सत्रह साल के लड़के के बारे में बताया है जो दूसरे बच्चों की तरह चल और बोल नहीं सकता। फिर भी शशांक की माँ हार नहीं मानती, वह शशांक का इलाज कराती है। उसे दूसरे बच्चों के साथ नोरमल स्कूल में पढ़ाती है। शशांक अपनी नियती से हार मानने को तैयार नहीं होता। वह अपनी पीछे की दुनिया की ओर झांकता है। "पीछे की तरफ एक दुनिया है - घर की, वहाँ माँ की, जीवन से हार मानकर बदल न जाने की जिद है, पापा की, जीवन के प्रति चुप्पी-भरी हैरानी है, दादी का, नियति को मानकर किसी तरह शांत रहने का उपक्रम है। आगे की तरफ वह दुनिया है, जहाँ हर घड़ी उसकी एक नई परीक्षा है।"[1] यहाँ शशांक निराश और विवश न होकर ज़िन्दगी में हिम्मत के साथ आगे बढने की बात सोचता है। लेखिका ने उपन्यास में शशांक जैसे विकलांग बच्चे और उसकी माँ की मानसिकता का बयान किया है।

---

1. अलका सरावगी - कोई बात नहीं - पृ. 30

बच्चों के बिना परिवार अधूरा है। बाल्यावस्था से ही बच्चों को शीलवान बनाने की आवश्यकता होती है। यदि विचारों को दिशा न दी जाए तो यह शक्ति नष्ट हो जाएगी। बच्चों के लालन-पालन में परिवार के सभी सदस्यों का योगदान आवश्यक होता है। उपन्यास में शशांक की माँ उसके पिता से भी ज़्यादा उसे प्यार करती है। उसके इलाज और उसकी देखभाल के लिए दिन-रात परिश्रम करती है। "शशांक अपना हाथ माँ के चेहरे की तरफ ले जाता है। माँ चौंककर आँखें खोलकर उसकी आँखों में देखती है। वह देखती है कि वह भी कह रहा है कि वह घर से बाहर जाए। अपना काम करें। वह वापस आँखें मींच लेती है। उसका पूरा शरीर पत्थर की तरह रहता है। वह हिलती डुलती नहीं। शशांक समझ जाता है कि वह कहीं नहीं जाएगी। वह उस कमरे और बाथरूम के अलावा बाकी घर में भी नहीं घूमती। कमरे की खिड़की तक नहीं जाती। बाहर की दुनिया उसके लिए नहीं बची है। वह उसके बगल में पड़ी-पड़ी उसी की जिंदगी जीना चाहती है।"[1] बच्चों की परवरिश बहुत ही संयम और धैर्य के साथ की जाती है। उनके लालन-पालन में परिवार के सभी सदस्यों का योगदान आवश्यक होना चाहिए। उपन्यास में शशांक जब बीमार हो जाता है तब उसकी माँ अपने सारे काम-वाम छोड़ कर अपने बेटे की देखभाल में लग जाती है। उसकी हिम्मत बढ़ाने की कोशिश करती है। माँ के लिए उसका बच्चा उसका सब कुछ होता है। एक माँ ही अपने बच्चों को पूर्ण रूप से समझ सकती है। उपन्यास में शंशाक की माँ अपने बच्चे का खूब ध्यान रखती है, उसे निराशा और विवशता से दूर रखने की कोशिश करती है।

---

1. अलका सरावगी - कोई बात नहीं - पृ. 124

5.1.2 अकेलापन

वर्तमान सन्दर्भ में अकेलेपन की समस्या तेज़ी के साथ उभर रही है। अकेलेपन के मूल में कई कारण हो सकते हैं। जब कोई व्यक्ति अपने परिवार से, रिश्ते-नाते तोड़ देता है तो वह अकेलेपन का शिकार हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का मानसिक स्वरूप भिन्न होने से अकेलेपन की त्रासदी का स्वरूप भी भिन्न हो सकता है। कभी संतति के अभाव के कारण, पति-पत्नी के बीच के झगड़े के कारण, कभी विद्रोह के कारण तो कभी सनातनी विचारों के कारण अकेलेपन का एहसास अधिक तीव्र होने लगता है। अकेलेपन के इस दर्शन से त्रस्त आज का इन्सान सचमुच प्यार का, सहानुभूति का प्यासा है।

अलका सरावगी ने अपना उपन्यास 'शेष कादम्बरी' में 70 वर्ष की रूबी दी की ज़िन्दगी के अकेलेपन को बयान करने की कोशिश की है। रूबी दी के पति सुधीर की मृत्यु के बाद वह अपनी बेटियों जया और गौरी के साथ एक अलग-सी दुनिया बसाती है और शादी के बाद दोनों बेटियाँ भी माँ से दूर हो जाती है। उसकी एक नातिन थी कादम्बरी वह भी अपने पुरुष मित्र के साथ दिल्ली में रहती है। उन सबके जाने के बाद रूबी दी अपने जीवन में बिल्कुल अकेली हो जाती है। वैसे यह अकेलापन रूबी दी अपने बचपन से ही महसूस कर रही है। अपने ग्यारह साल की उम्र में कानपूर के मामा-मामी के घर से रूबी दी को पता चलता है कि उसके माँ-बाप वे नहीं है जिनके साथ वह रहती है बल्कि कोई और है। तब से वह 'आइडेंटिटी क्राइसिस' की शिकार हो जाती है। "रूबी गुप्ता से ज़्यादा अकेलेपन

को किसने इतने लम्बे संग-साथ में जाना है - दुनिया और अपने होने की समझ के साथ-साथ उपजा ठेठ अकेलापन।"[1] अलका सरावगी ने अपने इस उपन्यास में बड़ी ही सूक्ष्मता एवं गहराई से अकेलेपन की व्यथा को सफलता से चित्रित किया है। यहाँ रूबी अपने घर की एक सदस्या जैसे होकर भी घर का हिस्सा बन नहीं पाती है।

वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी के अकेलेपन की पीड़ा से त्रस्त हो जाना निश्चित ही वैवाहिक जीवन की विडम्बना है। रूबी गुप्ता को अपने ससुराल में बहुत यातनाएँ सहना पडा था। यहाँ तक कि उसका पति सुधीर भी उसका साथ नहीं देता था। सुधीर पहले से ही चिडचिड़ा स्वभाव वाला आदमी था। अपनी पत्नी से भी वह प्यार से बातें नहीं करता था। सुधीर की नज़र में रूबी के दो दोष थे। पहला यह कि वह पढ़ी-लिखी है और दूसरा रूबी के पास अपना धन-दौलत है। "रूबी दी को लगने लगा अकेला हर आदमी है, पर यह घोर कष्ट है। कोई सुख नहीं। दूसरे व्यक्ति की चाह खत्म हो जाए, यह एक प्राकृतिक इच्छा नहीं है। हाँ, आध्यात्मिक दृष्टि से एकान्त की जरूरत एक अलग बात है। आखिर सारी चिड़िया भी एक साथी ढूँढकर ही डालों पर बैठती है, फुदकती है और गीत गाती है। मैना, गौरैया और कचपचिया जैसी चिड़िया तो भीड़ में रहती है, पर बाकी सारी चिड़ियों का भी एक साथी ज़रूर होता है। नीलकंठ जैसी एकाध चिड़िया ही होती है जो सिर्फ यौन-सम्पर्क के दिनों में साथी के साथ रहती है, बाकी समय अकेली रहना

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी - पृ. 11

पसन्द करती है। शायद शिव भी ऐसे रहे होंगे, इसलिए उन्हीं का एक नाम नीलकण्ठ को मिला हैं। सिर्फ अपने नीले रंग के लिए नहीं। सुधीर नीलकंठ थे।"[1] दाम्पत्य जीवन में एकाकीपन से भयानक परिणाम सामने आते हैं। स्त्री पुरुष दोनों को ही अन्यत्र जुड़े रहना चाहिए। साथी के अभाव की पूर्ति सम्बन्धों की कसौटी पर खरी उतरती है।

भावुक स्त्री अपने परिवेश में और रिश्ते-नातों में हुए परिवर्तन को बुढ़ापे में भी समझ नहीं पाती। इस कारण से वह यह महसूस करती है कि आज भी रिश्ते नाते के सभी लोग उसे उतनी ही आत्मीयता से चाहते हैं जितना कि पहले कभी चाहते थे। वास्तविकता इससे भिन्न होती है। सत्तर साल की रूबी गुप्ता के साथ भी ऐसा ही होता है। अपनी दो बेटियों और नातिन कादम्बरी के होते हुए भी वह जीवन में बिल्कुल अकेली है। इसलिए वह परामर्श नामक एक स्वयं सेवी संस्था चलाती है। उसके ज़रिए दूसरे बेसहाय स्त्रियों की सहायता करती है। अकेलेपन के सत्य को स्वीकार करना रूबी दी की अपने जीवन की विडम्बना है।

अलका सरावगी अपने इस उपन्यास में परिवार में अकेली होने वाली स्त्री की त्रासदी तथा अस्तित्व की तड़प को बयान करती है।

5.1.3 पारिवारिक संकल्पना

परिवार, व्यक्ति और उसके परिवेश तथा समाज के बीच की एक कड़ी है। परिवार के बिना मनुष्य अपने जीवन में अधूरा है। परिवार समाज की बुनियादी

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी - पृ. 145

संस्थाओं में सबसे अधिक प्राचीन तथा महत्वपूर्ण संस्था है। स्त्री-पुरुष के जीवन पर परिवार का प्रभाव सर्वाधिक पड़ता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य किसी न किसी परिवार से जुड़ा रहता है। पारिवारिक वातावरण तथा आस-पास के माहौल से स्त्री-पुरुष को संस्कार मिलते हैं। किशोरावस्था में मिली संगत का असर भी उस पर पड़ता है। विवाह द्वारा परिवार बनाकर मनुष्य सन्तानों के माध्यम से अपने को फैलाता है। पारिवारिक जीवन में भावना और भावनात्मक सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। अतः जो लोग इन भावनात्मक सम्बन्धों से सन्तुष्ट नहीं होते वे उत्तरदायित्व से मुँह मोड़कर परिवार से सम्बन्ध तोड़ लेते हैं। पति-पत्नी के सहयोग से ही दाम्पत्य जीवन का निर्वाह होता है। परिवार में पति का स्थान सर्वोच्च रहा है। अर्थात् पति की प्रभुता ही परिवार में होती है। इस प्रभुता के कारणों में एक तो पुरुष की शारीरिक दृष्टि से अधिक शक्तिशाली होना है तो दूसरा नारी की समर्पण भावना है। वैसे पत्नी की आर्थिक पराधीनता, पिता की प्रभुता, स्त्री के सम्बन्ध में समाज के हीन विचार और स्त्रियों की अशिक्षा भी पति की प्रभुता के हेतु होते हैं।

स्त्री परिवार का विरोध नहीं करती। स्त्री को घर चाहिए, परिवार भी। उसका स्त्रीवाद घर-परिवार जैसी संस्थाओं का विरोधी नहीं है। वह पुरुषसत्तात्मक समाज में नारी की दयनीय स्थिति में परिवर्तन चाहती है। वह उस परिवार का सपना देखती है जहाँ सब बराबर हो, जहाँ स्त्री एक गुलाम और दासी न मानी जाए, उसका स्वतंत्र बजूद हो। पत्नी का रूप धारण करना नारी के जीवन में एक महत्वपूर्ण कदम है। वह सच्चे दिल से अपने पति के साथ ही उसके परिवारवालों

की भी सेवा करती है। अगर पत्नी अनपढ़ है और पति उसे किसी कारणवश मारता है, प्रताड़ित करता है, तब भी वह पति परायणता का उदाहरण प्रस्तुत करती है। कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं जो पति के नाजायस सम्बन्धों को स्वीकार करके उन्हें क्षमा करके त्यागपूर्ण जीवन जीती हैं। भारतीय पत्नी अधिकतर तभी पति से विद्रोह करती है जब वह पति के अवगुणों से अत्यधिक दुःखी हो जाती है तथा यदि वह शिक्षित होती है तो पति का घर त्यागकर आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर अपनी संतान का पालन पोषण करती है।

पति के लिए घर बस रहने के लिए एक चारदीवारी, खाने के लिए एक रसोई और सोने के लिए एक कमरे के सिवा कुछ नहीं रह गया है। लेकिन स्त्री का पूरा व्यक्तित्व अपने ही घर की इमारत में दफन हो गया है, जिसे उसके पति ने अपने मूल्यों के हिसाब से खड़ा किया है। सामंती समाज में स्त्री किसी की माँ, बहन, पत्नी, प्रेमिका, दासी आदि रूप में पहचानी जाती थी, उसका अपना अलग वजूद नहीं था। लेकिन आज के इस आधुनिक बौद्धिक व वैज्ञानिक युग में नारी अपने अस्तित्व व व्यक्तित्व का निर्माण कर रही है। वह अपनी भावनाओं इच्छाओं और खासकर अपने अधिकारों के प्रति सजग है। यह सजगता कभी कभी पारिवारिक जीवन में स्त्री-पुरुष के बीच टकराहट का कारण भी बनती है। इस तरह की टकराहटों को हिन्दी साहित्य जगत के महिला रचनाकारों में अपनी लेखनी का विषय बनाया है। उनमें अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी भी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में पारिवारिक जीवन और उसकी समस्याओं का खुलकर बयान किया है।

5.1.4 मध्यवर्गीय समाज की कुण्ठा और आर्थिक विषमता

कलह और विघटन आज पारिवारिक जीवन का दैनिक विषय बन गया है। लेकिन इसका ज़्यादा प्रभाव मध्यवर्गीय परिवारों में ही है। आर्थिक स्वार्थता व आर्थिक अभाव, निम्न मध्यवर्गीय पारिवारिक विघटन के महत्वपूर्ण कारण हैं। आर्थिक स्वार्थता के कारण भाई-भाई, बाप-बेटा, माँ-बेटा सभी में मनमुटाव होता है, गृह कलह, दोषारोपण की स्थिति आती है और लोगों को एक-दूसरे से दूर करने का कारण भी बनती है। परिवार में पिता का शराबी होना बेटे की बेरोजगारी उसके कारण घिसी पिटी जिन्दगी बच्चों को अच्छी शिक्षा न दे पाना ये सब मध्यवर्गीय समाज की कुण्ठाएँ ही हैं।

"निम्न मध्यवर्गीय परिवार में एक व्यक्ति की आय कम होने के कारण एक अतिरिक्त व्यक्ति का खर्चा बोझ लगने लगता है। निम्न मध्यवर्ग पर आर्थिक संकटों के बादल बुरी तरह से छाये रहते हैं। इस वर्ग विशेष को सफेदपोश बने रहने के लिए सब कुछ करना पड़ता है लेकिन अर्थाभाव की बेड़ियाँ उसके पैरों में पड़ी ही रहती है। इस विषम आर्थिक संकट के फलस्वरूप ही निम्नमध्यवर्गीय माँ-बाप अपनी बेटी का विवाह करने में असमर्थ रहते हैं तो कर्ज के बोझ से दब कर लड़की को उसके भाग्य पर छोड़ने का विश्वास कर अपने कर्तव्य से च्युत होते हैं।"[1] मध्यवर्गीय समाज में विद्यमान एक कुप्रथा है विवाह की रूढ़िवादी मान्यता। समाज को अनमेल विवाह, बाल विवाह, जैसी कुरीतियों ने खोखला करके छोड़ा

---

1. डॉ. भारती शेल्के - महिला रचनाकारों की कहानियों में जीवन मूल्य - पृ. 154

है। लड़की के विवाह के समय, दहेज प्रथा अपने आप में एक समस्या तो है ही, पर साथ ही विवाह सम्बन्धी और भी अनेक समस्याओं की जन्मदात्री बनती है। उदाहरण के लिए पारिवारिक कलह, लड़कियों का अनब्याही होना आदि। महँगाई, बेरोजगारी, बेकारी, निर्धनता, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, दहेज, तलाक, वेश्यावृत्ति, अंधविश्वास ये सब समस्याएँ मध्यवर्गीय परिवारों को विघटित कर रही है।

अनामिका की 'गृहस्थी' कहानी में पति, पत्नी और उनकी बेटी सनु एक मध्यवर्गीय परिवार से है। पति, पत्नी पर हमेशा छोटी-छोटी बातों के लिए भी गुस्सा करता है। एक बच्चा होने पर भी उन दोनों के बीच घुटन तनाव, अनबन बना रहता था। एक बार खाना खाते समय गलती से उसके हाथों से कटोरी उलट गयी। और छींटे धुली कमीज पर पड़ गयी तो उसका पति सह नहीं पाता है। "उसे रूलायी नहीं आती, उसे गुस्सा नहीं आता, कुछ होता है तो बस पछतावा होता है। सुखी होते हैं ऐसे लोग जिनमें परिस्थितियों के प्रति दूसरों को दोषी टहराकर स्वयं निश्चिंत हो जाने की क्षमता होती है, उसमें ऐसी क्षमता नहीं, इसलिए वह दुखी है। दुखी और अकेली भी। नहीं तो, तो वह अकेली कहाँ है? दीवार की ओट से झाँक रही दो सहमी आँखें उस पर ही तो केन्द्रित हैं? उसने नल तक बढ़कर हाथ धो लिये हैं और सनु को गोद में उठा सुलाने चली गयी है।"[1] वैवाहिक जीवन में प्रेम का अभाव जीवनचक्र को बदल देता है। अर्थात् प्रेम की कमी से वैवाहिक जीवन में तनाव उत्पन्न होता है। स्त्री पुरुष के निकट तभी आती है जब उसे प्रेम की

---

1. अनामिका - प्रतिनायक, कथा संग्रह - पृ. 78

हृदयगत अनभूति होती है। पति-पत्नी घर में रहकर भी अजनबी की तरह सलूक करते हैं। क्योंकि वहाँ प्रेम की भावना है ही नहीं।

भारतीय स्त्री को बचपन से यह सिखाया जाता है कि पति की सेवा करना ही उसका धर्म है। उसे खुश रखना ही स्त्री जीवन को धन्य बनाता है। 'गृहस्थी' कहानी की पत्नी अपने पति का खूब ख्याल रखती है। लेकिन उसका पति उस पर शक करता है। अनामिका ने अपनी इस कहानी में प्रेम का, परिवार में आज क्या स्थान है उसे बताया है। साथ ही प्रेम के बदलते रूपों एवं नारी-पुरुषों के नित नये सम्बन्धों को लेखिका ने विभिन्न कोणों से चित्रित किया है।

'तबादला' कहानी की गीताली बिन माँ-बाप की बेटी है। वह अपने दादू और अन्य परिवारवालों के साथ रहती है। एक नौकरानी की हैसीयत से वह घर का सारा काम निभाती है "दोपहर की धूप आँगन के गुलाबों तक पहुँची, तब तक गीताली ने सारे काम निबटा लिए। दाल पिस चुकी, बड़े भाई साहब के सन्दर्भ-ग्रंथों पर जिल्द चढ़ गयी, मँझली चाची के तानपुरे का खोल सिल चुका, छोटी दी ही ओढ़नी पर इस्ती हो गयी। उसने चारों ओर आँखें दौड़ायी।"[1] मध्यवर्गीय परिवारों में बिना माँ-बाप के बच्चों के साथ किस तरह का सलूक किया जाता है उसका खुलासा लेखिका ने इस कहानी में किया है। कहानी में गीताली का फायदा सब लोग उठाते हैं। गीताली की मँझली माँ उसे कलकत्ता ले जाना चाहती है अपने बेटे की पत्नी और उसके परिवार वालों की सेवा करने के लिए।

---

1. अनामिका - प्रतिनायक - पृ. 41

'छिपकली, विद्यार्थी और जियो-फिजिक्स का वह प्रश्न' कहानी में एक होनहार विद्यार्थी का, आर्थिक अभाव के कारण स्कॉलरशिप के साथ विदेश में पढ़ने का अवसर तक नष्ट हो जाता है। उसके ऊपर घर की जिम्मेदारियाँ थीं। उसका पिता दमे का पुराना मरीज है। कभी कभी उनकी तबीयत इतनी खराब हो जाती है कि सप्त दो सप्त बिस्तर से उठ भी नहीं पाता। "बच्चे पाँच है एक तो हमारा विद्यार्थी ही, जो छात्रवृत्ति पर अपना गुजारा करता हुआ शहर में पढ़ता है और ट्यूशन से मिले पच्चीस-पचास भेजता भी है। दूसरी-तीसरी जुड़वा लड़कियाँ हैं, जिनकी पीठें आपस में जुड़ी है और बोल नहीं पाती। दिन-भर घर के किसी अँधेरे कोने में बिछी पुझाल पर लुढ़की सोती रहती हैं। कैसी विडम्बना है कि इन चिर-संगिनियों ने न एक दूसरे की सूरत देखी है, न बात की है आपस में। घर के बाहर शायद ही कभी निकलती है व्यर्थ का तमाशा बन जाता। .....चौथी फिर लड़की है पढ़ने-लिखने में अपने बड़े भैया जैसी ही होशियार और बड़बोली-मिठबोली होने के चलते गाँव भर की चहेती। पाँचवाँ है एक लड़का जिसे अपने गुल्ली-डंडे, गुलेल और दोस्तों से कभी फुर्सत मिली तो आकर खा-पी लेता है फिर गायब!"[1] इस कहानी में आर्थिक स्थिति के कुचक्र में परिवार के हर सदस्य पीसते जाते हैं। दिमाग में सिर्फ खर्चे का ताल-मेल लगा रहता है। कहानी में परिवार के बड़े लड़के के कंधे मजबूत होने से पहले ही परिवार का बोझ उन कंधों को असमय में ही झुका देता है। स्कॉलरशिप के साथ विदेश में जाकर पढ़ने का अवसर मिलने पर भी अपने परिवारवालों के लिए वह अपना सपना पूरा नहीं कर पाता। और

---

1. अनामिका - प्रतिनायक (कहानी संग्रह) - पृ. 59, 60

उनके लिए एक छोटे स्कूल का मास्टर बन जाता है। आर्थिक विवशता के कारण निम्न मध्यवर्ग को कई तरह के समझौते करने पड़ते हैं। आर्थिक स्तर के अन्तर्विरोधों का उन पर इतना दबाव पड़ता है कि आदमी मर जाता है।

अलका सरावगी ने अपनी कहानी 'ये रहगुजर न होती में' एक ऐसे दादा का चित्रण किया है जिसने अपने उसूलों के मुताबिक हमेशा जिया है। उसे परिवार के किसी भी सदस्य से प्यार नहीं था, न ही अपनी पत्नी से और न ही अपने बच्चों से। कहानी का दादा सिर्फ एक ही चीज़ से प्यार करता था और वह था 'पैसा'। कहानी में एक बेटी अपने बाबा से मिलने बरसों बाद अपने बच्चों को लेकर आती है लेकिन उसका बाबा न ही बेटी से ठीक-ठाक बात करता है और न ही उसके बच्चे की तरफ वात्सल्य से देखता है। "कितनी देर से वह बच्चे को गोद में लिये खड़ी है। बाँहें दुखने लगी है। बाबा बच्चे की तरफ नहीं देखते। न ही उसे बैठने के लिए कहते हैं। वह उम्मीद से बच्चे की तरफ देखती है कि शायद वह कुछ आवाज़ करे और बाबा का ध्यान उसकी तरफ चला जाए। पर वह सो गया है।"[1] यहाँ पिता के वात्सल्य की छाया पर अर्थ का प्रभाव कैसे कलुषित करता है, नजर आता है। पुराने संस्कारों में पला बाप अपनी इच्छा परिवारवालों पर लादने का प्रयास करता है।

दादा के कठु व्यवहार के कारण उसके बच्चे, पोते सब उन्हें छोडकर चले जाते हैं। दादी के दाह संस्कार शामिल होने के लिए वे सब आये तो दादा उन्हें अपनी माँ का क्रिया-कर्म नहीं करने देता। बरसों बाद उसकी पोती अपने बच्चों को

---

1. अलका सरावगी - दूसरी कहानी - पृ. 9

लेकर उसे देखने आयी थी लेकिन दादा घर के अन्य सदस्यों के बारे में उससे नहीं पूछता है, वह तो हमेशा उसकी संपत्ति का हिस्सा चाहता था "वह पूछना चाहती है बाबा से कि जिन लोगों को आप साहब बता रहे हैं, उन्हें साहब बनाया किसने? उन्हें अन्याय कराना सिखाया किसने? इस जिन्दगी में एक बार बाबा से वह यह पूछ लेना चाहती है। पर वह बिना कुछ बोले, पापा की तरह ही बैठी रहती है, जैसे उसके सिर्फ कान हों, जुबान नहीं। तो क्या पापा के अंदर भी इसी तरह शब्द चिल्लाते रहे थे बेआवाज, जैसे उसके अंदर चिल्ला रहे हैं?"[1] अपने अहम् को चोट पहुँचाने पर व्यक्ति अपने परिवार के साथ कितना नीच व्यवहार कर सकता है, पारिवारिक सम्बन्धों में अर्थ की उपस्थिति किस प्रकार का मोड़ लाती है, इन सब का उदाहरण इस कहानी में हैं।

आज भी मध्यवर्गीय व्यक्ति की स्थिति सबसे अधिक दयनीय है। उसे हर कदम पर जीवन से समझौता करना पड़ रहा है। परम्पराओं और रूढ़ियों की आड़ में वह अपनी तथा कथित इज्ज़त के मोह से जकड़ा हुआ है। आर्थिक तंगी के कारण वह पलायन करना चाहता है ज़िन्दगी से लेकिन उससे यह भी नहीं होता। अपने ही लोगों के शोषण के लिए उसे मोहरा बनाया जाता है किन्तु उसके अन्दर की मानवता भी सदैव छटपटाती रहती है, इस कटुता से उबरने के लिए संक्षेप में बताया जाए तो बढ़ती गरीबी का मूल कारण एक हद तक बहती आबादी और संसाधनों की कमी है।

---

1. अलका सरावगी - दूसरी कहानी - पृ. 12

5.1.5 पारिवारिक विघटन

पति-पत्नी के बीच का दाम्पत्य जीवन ही परिवार को संगठित करता है। जब यह आधार टूटने लगता है तो परिवार में विघटन होने लगता है। पति-पत्नी में अलगाव, तलाक काम सम्बन्धों का ठंडापन, शक, बीमारी, तीसरे की उपस्थिति, दहेज, सन्तान का अभाव, शारीरिक हिंसा आदि के कारण पारिवारिक जीवन में दरारें आ जाती हैं। लेकिन पारिवारिक विघटन का अर्थ केवल पति-पत्नी के रिश्ते का विघटन ही नहीं वरन् परिवार के प्रत्येक सदस्य चाहे वे माता-पिता हों अथवा भाई-बहन सभी के सम्बन्धों में परिवर्तन पारिवारिक विघटन में बदल जाता है। "देखा जाए तो झगड़े किस रिश्ते में नहीं होते माँ-बेटे, बेटी-माँ, भाई-भाई या भाई-बहन में। जहाँ कहीं भी विचारों में मतभेद होगा या एक-दूसरे से हक टकराएँगे वहाँ झगड़ा अवश्य ही होगा। लेकिन देखा गया है कि अन्य-रिश्तों में व्यक्ति खून का रिश्ता समझकर भुला देता है और थोड़े समय बाद स्वयं ही मेल हो जाता है किन्तु मात्र पति-पत्नी के रिश्तों को ही अधिक तूल दिया जाता है।"[1] यानी सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए पति-पत्नी दोनों को एक दूसरे के सामने झुकना होगा। अतः दोनों को समझदारी से ही ज़िन्दगी को आगे बढ़ाना है।

पारिवारिक विघटन के समस्त पहलुओं को आंकने का प्रयास समकालीन लेखिकाओं ने किया है। इनमें अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी भी शामिल है। इन तीनों लेखिकाओं ने बड़े ही मार्मिक एवं सूक्ष्म ढंग से इस समस्या को अपनी रचनाओं में उतारा है।

---

1. अंजली भारती - घर परिवार और रिश्ते - पृ. 67

पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में स्त्री की भूमिका को अहम् बनाने में अनामिका के उपन्यासों का विशेष महत्व है। 'पर कौन सुनेगा', 'मन कृष्ण मन अर्जुन', 'अवान्तर कथा', 'तिनका तिनके पास' जैसे उपन्यासों में उन्होंने वर्तमान सन्दर्भ में बदलते स्त्री-पुरुष सम्बन्धों, परिवर्तित सामाजिक मूल्यों आदि की चर्चा की है।

'पर कौन सुनेगा' उपन्यास की नायिका मीरा अपने ससुराल में पारिवारिक शोषण का शिकार होती है। मीरा आलोक से प्यार करती थी। शादी की पूरी तैयारी हो चुकी थी लेकिन शादी के दो दिन पहले आलोक के घर वाले शादी से मना कर दे देते हैं। और आलोक का विवाह जाँच कमीशन के अध्यक्ष रमाकान्त वरिष्ट की लड़की से करा देते हैं। मीरा की शादी आलोक के घर वाले उनके कम्पनी में काम करनेवाले रामचरण काश्यप का लड़का सुभाष व्यथित से जबरदस्ती करवा देते हैं। मीरा को अपने ससुराल में बहुत से अत्याचार सहने पड़ते हैं। यहाँ तक कि उसकी माँ से मिलने की इजाज़त तक उसे नहीं दी जाती क्योंकि उसके ससुरालवाले उसकी माँ को बाज़ारु औरत मानते थे। मीरा की माँ रुनु अविवाहित थी वह जब पेट से थी तो उसका प्रेमी लाल उसे और उसकी बेटी को छोड़ कर चला गया था। इसलिए मीरा का पति उसे अपने माइके जाने नहीं देता था। उन दिनों मीरा की माँ बहुत बीमार थी तो उसकी तबीयत के बारे में कहने उसके बचपन का साथी टुन्नन आता था। लेकिन मीरा के पति को उसका आना जाना अच्छा नहीं लगता था और उसका पढ़ा लिखा होने के कारण मीरा को और टुन्नन को लेकर बुरी तरह शक करने भी लगता है। वह कहता है, "पढ़ा-लिखा होने का मतलब अंधा होना तो नहीं

है। क्या मैं इतना भी नहीं समझता कि माँ की बीमारी सिर्फ एक बहाना है। टुन्नन के साथ कुछ दिन आराम से रहकर पुरानी यादें ताज़ा कर लेने का इरादा है। मुहल्ले की ही लड़की हो न। एक आदमी से बँधकर रह ही कैसे सकती हो? रातोंरात आदमी के संस्कार बदल तो नहीं जाते। सारा जीवन तबाह कर रखा है। जाओ, अभी ही चली जाओ, निकलो!"[1] दाम्पत्य सम्बन्धों के अलगाव का एक बड़ा कारण पति-पत्नी का एक दूसरे पर शक करने से सम्बन्धों में तनाव उपस्थित होना है। उपन्यास में मीरा और सुभाष की शादी अपनी अपनी पसन्द से नहीं होती आपसी इच्छा के खिलाफ जब ऐसे विवाह होते हैं तो आपसी रिश्तों का टूटना वहाँ निश्चित ही होता है जिससे टूटने की पीड़ा सहन करना उसकी नियति बन जाती है।

अनामिका का दूसरा उपन्यास 'मन कृष्ण, मन अर्जुन' उपन्यास भी पारिवारिक जीवन की जटिलताओं से संबन्धित है। उपन्यास में वसुधा, शिखा और तरु की कथा है। इनमें वसुधा का प्रेमी अमित है। अमित उसे छोड़ कर चला जाता है। दिवाकर शिखा से मुहोबत करता है। शिखा को भी दिवाकर अच्छा लगने लगा था, लेकिन उसे अपने परिवारवालों का ध्यान रखना था इसलिए वह अमित के प्यार को ठुकरा देती है तो दिवाकर शिखा से बदला लेने उसकी दोस्त तरू से शादी करता है लेकिन उनका वैवाहिक जीवन अच्छे से नहीं गुज़रता। दोनों में झगडे शुरू हो जाते हैं और उनका परिवार बिखर जाता है। उपन्यास में एक जगह वसुधा शिखा से कहती है कि, "गृहस्थी विलास नहीं, साधना है, तभी तो विवाह को

---

1. अनामिका - मन कृष्ण, मन अर्जुन - पृ. 64

धार्मिक अनुष्ठान की गरिमा मिली है। कर्तव्य ही है विवाह भी। तेरी पारिवारिक परिस्थिति भी एकदम से ऐसी भी नहीं कि विवाह तेरे लिए स्वार्थ की पराकाष्ठा हो! और विवाह का मतलब परिवार से टूटना थोड़े ही होता है। कहीं जुड़ने का मतलब यह नहीं कि हर जगह से टूटना पड़े। सबको साथ लेकर चलने वाला महिमामय व्यक्तित्व होता है सच्ची गृहस्थित का!" वास्तव में पति-पत्नी, गृहस्थी की गाड़ी के दो पहिए है, जिन्हें अपने अपने दायित्वों तथा कर्तव्यों का एक साथ पालन कहना होगा। गृहिणी विहीन गृह मरुस्थल के बराबर है कोई भी पत्नी अपने परिवार का विघटन नहीं चाहती।

उपन्यास में तरु अपने पति दिवाकर को शराबी होने के कारण छोड़कर चली जाती है। बोहोश की हालत में भी वह अपनी पूर्व प्रेमिका शिखा का नाम बुलाता है। तरु बहुत ही शालीनता, विनय और गंभीरता से अपनी आदर्श गृहस्थी चला रही थी, लेकिन उसके पति के इस तरह के व्यवहार से उसकी गृहस्थी विघटित हो जाती है "जिस तरह के माहौल में तरु पली थी, उसमें पीना-वाना कभी बड़ी बात उसे लगा नहीं सकता था, आराम से झेल रही थी छोटी-मोटी चख चुख, मगर यह घटना..... यह तो किसी भी समर्पित के लिए मान की बात होती कि उसके स्वामी के अचेतन पर किसी और की छाया हो; जिसके लिए इतना सब छोडा, इतना बदला खुद को.... इसका यह प्रतिदान किसी का मन तोडेगा ही!"[1] पति-पत्नी के बीच तीसरे की उपस्थिति से पारिवारिक जीवन एक दम टूटकर

---

1. अनामिका - मन कृष्ण, मन अर्जुन - पृ. 76

बिखर जाता है। उपन्यास में तरु अपने पति का शराबी होना तो फिर भी सह लेती है लेकिन उन दोनों के बीच तीसरे की उपस्थिति वह उसके सहनशक्ति के पार थी। इसलिए वह अपने पति को छोड़कर चले जाने मज़बूर हो जाती है।

'अवान्तर कथा' उपन्यास में नन्ना और उसके पति दीनानाथ के बीच 'प्रोफशनल ईगो' है। दीनानाथ जज है और नन्ना डॉक्टर। दोनों एक ही घर में प्राक्टीस करते थे। नन्ना को देखने बहुत मरीजें आया करते थे लेकिन दीनानाथ का सारा वक्त खाली-खाली था। क्लिनिक से नन्ना जब कमरे में आती थी तो दीनानाथ उसके ऊपर गुस्सा उतारते थे। "कैसा निकम्मा बच्चा तैयार हो रहा है अलहदा। माँ को चण्डाल-चौकड़ी जमाने से फुर्सत हो तब न। एक भी आदत जो करीने की पड़ी होती। सुबह से जो चिल्ल शुरू होती है - रात तक नहीं थमती। घर में पढ़ने-लिखने का माहौल ही नहीं रहा। ....यह चाय है? ये कपड़े धुले हैं? यही रिजल्ट लाए है साहबजादे? ...तुम डॉक्टरनियों के ही तो मजे हैं - प्रतिभाशून्य व्यक्ति भी कैनवासिंग से तुरंत लाइम-लाइट में आ जाए। ....सुबह का बना खाना शाम तक निगलना पड़ता है यह घर है भला!... जिन मरियल मरीजों के दम पर इतना उछलती हो - तुम्हें अमर नहीं कर देंगे इतिहास में। मिडिऑकर हो, मिडिऑकर ही रहोगी। ...पैसे तो पान की दूकानवाला भी उगा लेता है।"[1] यहाँ कामकाजी महिलाओं का अंकन करने का प्रयास अनामिका ने किया है। कामकाजी स्त्री दोहरे व्यक्तित्व को संभालती है। फिर भी वह घर पर अपने पति द्वारा अपमानित होती है। दोहरी

---

1. अनामिका - अवान्तर कथा - पृ. 25

भूमिका का बोझ उसे तोड़ ही देता है। चाहकर भी वह बाहर की और न ही घर की जिम्मेदारियाँ टाल सकती है। कामकाजी नारी की यही नियति है। पुरुष के काम के घंटे तय थे, उसका पारिश्रमिक भी तय था। पारिश्रमिक होने के कारण उसका दर्जा भी तय था। लेकिन स्त्री का कुछ भी तय नहीं था बल्कि उस पर सब थोपा हुआ था। एक स्त्री के काम के घंटे सुबह से शुरू होते हैं और सोने तक चलते हैं। पारिवारिक रूप से आज भी वैसा ही चल रहा है।

उपन्यास में दीक्षा का पति सतीश सिन्हा बिहार के शीर्षस्थ अपराध क्षेत्र जहानाबाद का एम.एल.ए है। वह बहुत ही घटिया किस्म का इन्सान था। उसके मुँह से सदा गालियाँ बरसती थीं। देखने में तो वह आकर्षक दिखता था लेकिन मुँह खोलते ही उसका आकर्षण भाग जाता था। "तरु अक्सर सोचती थी - "ऐसी बोली बोलने वाले से कोई ब्याह कैसे कर सकता है भला? प्यार करते समय भी नाक से ऐल्शेसन की सी साँस आती होगी। रे बाबा धन्य है दीक्षा जो इतने दिन झेल गई, और अभी भी लाख तनावों के बावजूद विवाह-विच्छेद तो नहीं ही किया, सिर्फ अलग ही तो रह रही थी।"[1] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि यदि पति स्त्री को प्यार नहीं करता या प्रेम नहीं करता तो पत्नी उस खालीपन को भरने के लिए भटकती रहती है। कुछ स्त्रियाँ मन मसोसकर रह जाती हैं तो कुछ स्त्रियाँ भक्ति सन्यास का मार्ग अपनाती हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का मूल आधार प्रेम है। किसी भी रिश्ते में प्रेम का होना ज़रूरी है। बिना प्रेम के सम्बन्धों में ठंडापन आ जाना स्वाभाविक है।

---

1. अनामिका - अवान्तर कथा - पृ. 13

5.1.6 बुढ़ापे की समस्या और मृत्युबोध

उम्र के ढलने पर बुढ़ापा मानव को जकड़ने लगता है। बुढ़ापे में कई तरह के शारीरिक अस्वास्थ्य का अनुभव होता है। कम सुनायी देना, पैरों में दर्द होना, बालों का सफेद होना, भूलने की बीमारी आदि बुढ़ापे के कारण मनुष्य शरीर में होने वाले बदलाव हैं। ऐसी अवस्था में उन पर ध्यान देने और उन्हें प्यार करने के बजाय परिवार के अन्य सदस्य उन्हें उपेक्षा के भाव से देखते हैं। इसलिए बूढ़े लोग अपने जीवन में अकेलापन महसूस करते हैं। इसके साथ ही साथ उन्हें मृत्युबोध भी सताने लगता है।

अलका सरावगी ने अपनी कहानी 'खिंजाब' में अपने बेटे और उसके परिवार के होते हुए भी जीवन में अकेले होने वाली बूढ़ी औरत दमयन्ती का चित्रण किया है। उसकी आँखों का आपरेशन हुआ है। लेकिन उस वक्त भी उसका बेटा और परिवार दमयन्ती का साथ नहीं होते - "कमरे में मरे हुए सन्नाटे को तोड़ने के लिए उसने पूछा - 'भैया-भाभी आएँगे क्या - ऑपरेशन के समय? पूछते-पूछते ही उसे लगा कि उसने बहुत बेवकूफी भरा प्रश्न पूछ डाला है। दमयन्तीजी ने मुँह टेढ़ा कर ऐसा कहा - 'अपने ऑफिस के आदमी को ही भेज देंगे। आस्पताल का बिल चुकाने यहाँ क्या कम है।' कहकर उन्होंने अपनी आँखें फिर बन्द कर लीं।"[1] अक्सर परिवार में माँ-बाप के बूँढ़े हो जाने पर बच्चों का उनके प्रति जो व्यवहार है वह बहुत बुरा होता है। वे उनकी बातें सुनने और उनकी देखभाल करने तक

---

1. अलका सरावगी - पृ. 27

तैयार नहीं होते। यहाँ लेखिका ने अपने जीवनसाथी के मिल जाने या फिर ऊँचे पद पर पहुँच जाने पर अपने माँ-बाप का ध्यान न रखनेवाले और उन्हें प्यार न देने वाले बच्चों पर व्यंग्य किया है।

अलका सरावगी ने अपने उपन्यास 'शेष कादम्बरी' में भी 70 वर्ष की बूढ़ी रूबी गुप्ता की बुढ़ापे की समस्या और आगे के जीवन में अकेली पड़ जाने के कारण उसे होने वाले मृत्युबोध के एहसास का भी बयान किया है। अपने दो बच्चों के और नातिन कादम्बरी के होते हुए भी बड़े से घर में वह बिल्कुल अकेली है "घुटनों का दर्द बढ़ता जा रहा है। कई बार तो ऐसा लगता है कि गाड़ी में बैठना और उतरना तक भयंकर यातना है, पर रूबी दी किसी तरह शरीर को चलाए जा रही है। अब लगता है कि यह मन, बुद्धि, चित्त या आत्मा - न जाने किस नाम से इसे पुकारना ठीक रहेगा भी अब जवाब दे रहा है।"[1] बुढ़ापे में शरीर कमज़ोर होता है जिसके कारण बहुत सी तकलीफें होती हैं। ऐसे वक्त किसी का साथ होना ज़रूरी है। उपन्यास में रूबी गुप्ता के साथ उसकी एक नौकरानी के सिवा और कोई नहीं है उसकी देख भाल के लिए। अगर अपनों का साथ होता तो इन परेशानियों को रूबी कुछ कम महसूस करती थी।

बुढ़ापे में मन और शरीर दोनों से ही आदमी कमज़ोर हो जाता है। कभी-कभी इतनी-सी बातों पर भी बहुत सी परेशानियाँ महसूस होने लगती हैं। किसी चीज़ के गुम हो जाने पर या फिर किसी से रूठ जाने पर दिल बेचैन होने लगता है। कुछ ऐसा ही हाल है उपन्यास में रूबी गुप्ता का - "यों ही, रानी बिटिया। कभी-कभी उम्र में आदमी इतनी-सी बात से भी परेशान हो जाता है कि कोई छोटी-सी

बात रोज की तरह नहीं होती। थोडा भी कुछ बदल जाए, तो बहुत दिक्कत लगती है। और मन है कि कभी-कभी एकदम किसी नए रास्ते पर चल पड़ता है - रूबी दी ने कादम्बरी से अपने दिल की बात कह हलकापन महसूस किया।"[1] बूढ़ा मन बच्चों की तरह कच्चा होता है। यहाँ रूबी गुप्ता अपनी नातिन से बुढ़ापा और उसकी कमज़ोरियों के बारे में बताती है। इसके अलावा रूबी दी का यह भी मानना है कि उम्र के एक मुकाम पर आकर आदमी सचमुच अपने को ढीला छोड़ देता हैं - क्योंकि उसमें अपने जीवन भर की मानी हुई सारी मान्यताओं और सारे उसूलों की कमाई को पकड़े रहने लायक ऊर्जा नहीं बची रह जाती।

मनुष्य जब अकेला होने के साथ ही साथ बूढ़ा भी हो जाता है तो ज़ाहिर है कि मानसिक घुटन और तनाव के कारण मृत्यु के बारे में सोचने लगता है। 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में रूबी गुप्ता में जो समाज सेवा से जुड़ी रहती है, अकेलापन जीवन संघर्ष और तनाव के कारण मृत्युबोध जागृत होने लगता है "कितनी बीभास हो सकती है मृत्यु इस तरह गैरों के बीच पड़ा रहना। इधर कई बार रात में नींद खुलने पर रूबी दी मौत के बारे में सोचती हैं - कहाँ जाता होगा आदमा? कैसा लगता होगा देह छोड़ते वक्त? यह आत्मा- वात्मा सचमुच कोई चीज है क्या? कैसे पता चले? कई बार लगता है कि कुछ नहीं है। आदमी मरा सो मरा। पर यह सच है कि आत्मा होने की बात तसल्ली देती है कि इस जीवन का कोई अन्तिम अर्थ है, वरना कुछ भी जानने-सीखने करने का क्या मतलब?"[2] मृत्यु ही जीवन की

---

1. अलका सरावगी - शेष कादम्बरी - पृ. 33
2. वही - पृ. 40

अन्तिम सच्चाई होती है। जो पृथ्वी में जन्म लेता है उसे किसी न किसी दिन ज़रूर मरना पड़ता है। उपन्यास में रूबी दी अपनी मृत्यु के बारे में सोचती है क्योंकि अपने जीवन के अन्तिम समय में वह बिल्कुल कमज़ोर और अकेली पड़ जाती है और अकेले व्यक्ति को ही मृत्युबोध सताने लगता है। इस प्रकार लेखिका ने इस उपन्यास में बुढ़ापे और उससे सम्बन्धित सारी समस्याओं को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है।

निष्कर्ष

अकेली औरत का सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ चुनौती के रूप में उभरना समकालीन स्त्री लेखन की खासियत है। लेकिन स्त्री जब अपनी सम्भावनाओं को विशाल सामाजिक दायित्व बोध से जोड़कर खोलती है तब स्त्री का अस्तित्व संघर्ष और सार्थक हो उठता है। समकालीन लेखिकाओं में अनामिका, अलका सरावगी और महुआमाजी के कथा साहित्य में चित्रित नायिकाएँ उन तमाम भारतीय स्त्रियों को लेकर उपस्थित होती हैं जो अपने परिवार और उसके बाहर तरह-तरह के अधिकारों से वंचित और शोषित होकर भी स्त्री समाज पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करती हैं। इस तरह वह समूह-संघर्ष की नई सम्भावनाओं को खोलती है और अपने संघर्ष को व्यापक जनसमुदाय के साथ जोड़ने की कोशिश भी करती है। अर्थात् अनुभव एवं संघर्ष की जलती भट्टी से नए सिरे से रूपायित व्यक्तित्व संघर्ष को वह सामाजिक संघर्ष के साथ जोड़ देती है।

सहायक ग्रंथ सूची

सहायक ग्रंथ सूची

आधार ग्रन्थ

1. दस द्वारे का पिंजरा	अनामिका राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2008
2. पर कौन सुनेगा	अनामिका अंकुर प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1983
3. मन कृष्ण मन अर्जुन	अनामिका साहित्य रत्नालय प्रकाशन प्र.सं. 1984
4. अवान्तर कथा	अनामिका किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2000
5. तिनका तिनके पास	अनामिका वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2008
6. प्रतिनायक (कहानी संग्रह)	अनामिका बिहार ग्रंथ कुटीर, पटना प्र.सं. 1979

7. कलि-कथा : वाया बाइपास	अलका सरावगी आधार प्रकाशन, हरियाणा प्र.सं. 1998
8. शेष कादम्बरी	अलका सरावगी राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं. 2001
9. कोई बात नहीं	अलका सरावगी राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं. 2004
10. एक ब्रेक के बाद	अलका सरावगी राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं. 2008
11. कहानी की तलाश में (कहानी संग्रह)	अलका सरावगी राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं. 1996
12. दूसरी कहानी (कहानी संग्रह)	अलका सरावगी राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं. 2000
13. मैं बोरिशाइल्ला	महुआ माजी राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं. 2007

14. मरंगा गोड़ा नीलकंठ हुआ — महुआ माजी
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि
नई दिल्ली, प्र.सं. 2012

आलोचनात्मक ग्रंथ

15. आधी दुनिया का सच — कुमुद शर्मा
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

16. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी — रमणिका गुप्ता
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2002

17. आम औरत : जिन्दा सवाल — सुधा अरोड़ा
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

18. आँखों की दहलीज — मेहरुन्निसा परवेज़
अक्षर प्रकाशन प्रा.लि.
दरियागंज, दिल्ली, प्र.सं. 1968

19. उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता — वीरेन्द्र यादव
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2009

20. उपनिवेश में स्त्री ; मुक्ति-कामना की दस वार्ताएँ — प्रभा खेतान
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2003

21. एक नज़र कृष्णा सोबती पर — रोहिणी अग्रवाल
अखिल भारती प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2000

22. एक इंच मुस्कान — मन्नू भंडारी एवं राजेन्द्र यादव
राजपाल एन्ड सन्स, नई दिल्ली
छठा संस्करण 1960

23. औरत कल, आज और कल — आशारानी व्योरा
कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज
नई दिल्ली, सं. 2006

24. कथा साहित्य के सौ बरस — संपादक, विभूति नारायण राय
शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली
सं. 2008

25. कथा समय में तीन हमसफ़र — निर्मला जैन
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.
नई दिल्ली, प्र.सं. 2011

26. खुली खिडकियाँ — मैत्रेयी पुष्पा
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2003

27. घर-परिवार और रिश्ते — अंजली भारती
सावित्री प्रकाशन, दिल्ली
सं. 2010

28. दरम्यान
मृणाल पाण्डेय
पराग प्रकाशन, देहली, प्र.सं. 1977

29. नये उपन्यासों में नये प्रयोग
दंगल झालटे
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 1994

30. नारी चेतना के आयाम
अलका प्रकाशन
लोक भारती पुस्तक
विक्रेता तथा वितरक, इलाहाबाद
प्र.सं. 2007

31. नारी एक विवेचन
धर्मपाल
भावना प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 1996

32. नायक खलनायक विदूषक
मन्नू भंडारी
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.
दिल्ली, प्र.सं. 2002

33. नैतिक लोकतंत्र की तलाश
मस्तराम कपूर
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
प्रा.लि, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

34. पर्यावरण की राजनीति
लता जोशी
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
लिमिटेड, नई दिल्ली
प्र.सं. 2001

35. प्रतिदिन	ममता कालिया राजकमल प्रकाशन प्रा.लि नई दिल्ली, प्र.सं. 1983
36. प्रेमचन्द घर में	शिवरानी देवी प्रेमचन्द आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली सं. 1956
37. बंग महिला : नारी मुक्ति का संघर्ष	भवदेव पाण्डेय वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1999
38. बात एक औरत की	कृष्णा अग्निहोत्री इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1974
39. भारतीय स्वतंत्रता और हिन्दी उपन्यास	शशिभूषण सिंहल आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली प्र.सं. 2000
40. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ	डॉ. शीलप्रभा वर्मा विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर प्र.सं. 1989
41. मनुष गंध	सूर्यबाला किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2003

42. मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य	गुलाबराव हाड़े विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर प्र.सं. 1987
43. महिला रचनाकारों की कहानियों में जीवन मूल्य	डॉ. भारती शेल्के विद्या प्रकाशन, कानपुर प्र.सं. 2008
44. मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी जीवन	डॉ. शोभा यशवंते विकास प्रकाशन, कानपुर प्र.सं. 2009
45. शब्दों के आलोक में	कृष्णा सोबती राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, प्र.सं. 2005
46. शिवानी के उपन्यासों में सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना	डॉ. अर्चना गौतम कुनाल प्रकाशन, दिल्ली सं. 2009
47. समकालीन कहानी की पहचान	डॉ. नरेन्द्र मोहन वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1987
48. समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष	डॉ. अर्जुन चव्हाण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2008

49. समकालीन हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श	संपादक प्रो श्रीराम शर्मा वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2009
50. समकालीन महिला लेखन	डॉ. ओम प्रकाश शर्मा पूजा प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2002
51. समकालीन रचना और आलोचना	सं. रामस्वरूप द्विवेदी प्रतिभा प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं. 1988
52. समकालीन हिन्दी कहानी स्त्री-पुरुष संबन्ध	सुनंत कौर अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1991
53. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी	सं. डॉ. रामकुमार गुप्त चिन्ता प्रकाशन, राजस्थान प्र.सं. 1989
54. स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रूप	नीहार गीते पंचशील प्रकाशन, जयपुर सं. 1996
55. साठोत्तरी कहानी में परिवार	डॉ. इन्दु वीरेन्द्र संजय प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2008

56. साठोत्तरी महिला कहानीकार (पारिवारिक विघटन के संन्दर्भ में)	मंजु शर्मा राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली प्र.सं. 1992
57. स्वामी	मन्नू भंडारी नेशनल पेपर बेक्स, नोएडा द्वितीय सं. 1987
58. स्त्री उपेक्षिता	डॉ. प्रभा खेतान (अनुवादक) हिन्द पॉकेट बुक्स लिमिटेट नई दिल्ली नवीन सं. 2002
59. स्त्री : देह की राजनीति से देश की राजनीति तक	मृणाल पाण्डे राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1987
60. स्त्री आकांक्षा के मानचित्र	गीताश्री सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2008
61. स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों का विमर्श	डॉ. उषा कीर्ति रणवत साहित्य चन्द्रिका प्रकाशन सं. 2006
62. स्त्री अस्मिता के प्रश्न	सुभाष सेतिया कल्याणी शिक्षा परिषद् नई दिल्ली, प्र.सं. 2006

63. स्त्री लेखन और समय के सरोकार — हेमलता महिश्वर
नेहा प्रकाशन, दिल्ली
सं. 2006

64. श्रृंखला की कड़ियाँ — महादेवी वर्मा
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
तृतीय सं. 2001

65. हम सभ्य औरतें — मनीषा
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
द्वि.सं. 2004

66. हिन्दी कहानी का इतिहास — गोपाल राय
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

67. हिन्दी कहानी एक अंतरंग पहचान — उपेन्द्रनाथ अश्क
निलाभ प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 1968

68. हिन्दी कहानी : आठवाँ दशक — मधुर उप्रेती
जागृति प्रकाशन, अलीगढ
प्र.सं. 1984

69. हिन्दी कहानी प्रक्रिया और पाठ — सुरेन्द्र चाधरी
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1995

70. हिन्दी कहानी में युग बोध	डॉ. मंजुलता सिंह पराग प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1994
71. हिन्दी कहानी समकालीन परिदृश्य	डॉ. सुखबीर सिंह अभिव्यंजना प्रकाशन प्र.सं. 1985
72. हिन्दी उपन्यास	डॉ. रामचन्द्र तिवारी विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणासी प्र.सं. 2006
73. हिन्दी के आधुनातन नारी उपन्यास	इन्दु प्रकाश पाण्डेय हिन्दी बुकसेंटर, नई दिल्ली प्र.सं. 2004
74. हिन्दी के चर्चित उपन्यासकार	डॉ. भगवती शरण मिश्र राजपाल एन्ड सन्ज़, दिल्ली प्र.सं. 2010
75. हिन्दी उपन्यास और स्त्री जीवन	डॉ. ज्योति किरण मेघा बुक्स, दिल्ली प्र.सं. 2004
76. हिन्दी उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति	डॉ. वीनारानी यादव अकादमिक प्रतिभा, दिल्ली प्र.सं. 2006

77. हिन्दी उपन्यास नारी विमर्श
डॉ. शोभा वेरेकर
अभय प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. 2010

78. हिन्दी महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना
डॉ. उषा यादव
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1999

79. हिन्दी उपन्यासों में रूढिमुक्त नारी
डॉ. राजरानी शर्मा
साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
प्र.सं. 1989

80. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास
सुमन राजे
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
प्र.सं. 2003

81. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास
बच्चन सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
नई दिल्ली
तीसरा सं. 2000

82. त्रिशंकु
अज्ञेय
सरस्वती प्रेस, बनारस
सं. 1945

पत्र-पत्रिकाएँ

1. साहित्य अमृत
सं. विद्यानिवास मिश्र
जानवरी 2003 (मासिक)
वर्ष-7, अंक-6

2. आजकल — सं. सीमा ओझा
मार्च-2008
वर्ष-63, अंक-11, पूर्णक 761
आजकल प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली

3. कथादेश — सं. हरिनारायण
अक्तूबर 2004
अंक-8, साहित्य संस्कृति और कला
का समग्र मासिक, दिल्ली

4. साक्षात्कार — सं. ध्रुव शुक्ल
मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् का मासिक
सितंबर 1981

5. आजकल — सं. नरेन्द्र सिन्हा
सितंबर 1984, आधुनिक साहित्य एवं
संस्कृति का संवाहक मासिक

6. वागर्थ — सं. एकान्त श्रीवास्तव, कुसुम खोमानी
अंक 190, मई 2011, भारतीय भाषा
परिषद, कोलकत्ता

7. साक्षात्कार — सं. आग्नेय
259, जुलाई 2001
मध्यप्रदेश साहित्य
परिषद् का मासिक प्रकाशन
भोपाल

8. सम्मेलन पत्रिका	(शोध त्रैमासिक) सं. विभूतिमिश्र भाग 15, संख्या 1, सन् 2010 ई. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग इलाहाबाद
9. वागर्थ	सं. प्रभाकर क्षेत्रिय जुलाई 1997, अंक 28 भारतीय भाषा परिषद कोलकत्ता
10. संग्रथन	सं. डॉ. एम.एस. विनयचन्द्रन अप्रैल 2012, अंक 10 हिन्दी विद्यापीठ केरल की मुख्य पत्रिका (मासिक)
11. साक्षात्कार	सं. हरिभटनागर मई 2004, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् का मासिक प्रकाशन भोपाल
12. प्रकार	सं. विवेकी राय वर्ष 7, अंक 6 अक्तूबर 1973
13. वाङ्मय	सं. डॉ. एस. फिरोज़ अहमद त्रैमासिक, जून 2009

14. वागर्थ — सं. विजय बहादुर सिंह
173, दिसंबर 2009
भारतीय भाषा परिषद, कोलकत्ता

15. हंस — सं. राजेन्द्र यादव
वर्ष 27, अंक 4
नवंबर 2012, जन चेतना का प्रगतिशील कथा साहित्य

16. वागर्थ — सं. रवीन्द्र कालिया
जुलाई 2004, भारतीय भाषा परिषद्
कोलकत्ता

परिशिष्ट

शोध छात्रा के प्रकाशित शोध लेख

1. 'दस द्वारे का पिंजरा' में नारी अस्मिता का संघर्ष - संग्रथन, जून 26, 2013 (Published)
2. 'नदी के द्वीप में अज्ञेय की प्रेम दृष्टि' - अनुशीलन, जुलाई 2011 (Published)
3. 'एक सलाम हर औरत के नाम' - नवभारत टाइम्स, मुंबई 26, नवम्बर 2011 (Published)
4. 'आदिवासी जीवन और प्रकृति' - अनुशीलन, जनवरी 2013 (Published)

उपसंहार

उपसंहार

समकालीन कथा साहित्य में महिला लेखन का आगमन आकस्मिक नहीं, वह एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है, आज के साहित्य में उसकी उपस्थिति बहुत महत्व रखती है, कोई उसे अनदेखा नहीं कर सकता। उसके आरंभिक दौर में स्त्री अस्मिता की प्रतिष्ठा प्रमुख मुद्दा रही है लेकिन आज उसका विकास हुआ है, समाज और राजनीति ही नहीं इतिहास भी उसके प्रतिपाद्य व मुख्य मुद्दे के रूप में जगह पा रहे हैं। अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी का रचना संसार इसे प्रमाणित करता है।

महिला लेखन पारिवारिक विघटन और स्त्री पुरुष संबन्ध के रूप में शुरू हुआ था। समाज के किसी भी क्षेत्र में स्त्री को उचित स्थान नहीं हासिल हुआ था। हर कहीं उसे दूसरा दर्जा ही प्राप्त हुआ। परिवार में वह रसोईघर की नौकरानी थी, वह भी वेतनहीन। फिर पति के मन बहलाने की वस्तु तथा उसकी सन्तानों का पालन-पोषण करने को बाद्य औरत। यहाँ स्त्री की अस्मिता या पहचान नहीं वह अन्यों का उपकरण मात्र रह जाती है। लेकिन आज आधुनिक नारी की महत्वाकांक्षाएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। महत्वाकांक्षाओं की इस दौड़ में आज वह पुरुषों को पीछे छोड़ती हुई, सफलता के शिखरों को छूने लगी है। यहाँ तक पहुँचने के लिए उसे बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। अपने कार्यक्षेत्र में पुरुषों की अपेक्षा स्त्री को निरंतर,

भिन्न और निर्मम परिस्थितियों से गुजरना पड़ा है। शिक्षित और आत्मनिर्भर होने के बाद आज स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन तो आया है लेकिन इस बदलते हालात से कुछ ऐसी समस्याएँ भी उभरी हैं जिससे उसके अस्तित्व की समस्याएँ अधिक गंभीर व जटिल बन गई है। स्त्रियों के जीवन में कुछ समस्याएँ ऐसी हैं जो राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न हुई है और कुछ समस्याएँ ऐसी भी हैं जो उसके स्त्री होने के कारण उत्पन्न हुई हैं। स्त्री होने के कारण जो समस्याएँ हैं वह ज्यादा गंभीर और भयावह इसलिए है कि ये समस्याएँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा स्त्री के प्रति की गई ज़्यादती के कारण पैदा हुई है। स्त्री-विरोधी परिवेश में स्त्रियाँ गृहिणी हो या कामकाजी उसे भेदभाव और विसंगतियों से जूझना ही पड़ता है। पुरुष द्वारा संचालित और व्यवस्थित इस दुनिया में स्त्री की स्वाभाविकता की कभी सराहना नहीं की गयी। स्त्री के व्यक्तित्व को, उसकी सम्पूर्ण चेतना को कभी ऊपर उठने नहीं दिया गया। देहधर्म से अलग, आज मुक्त स्त्री की अवधारणा पुरुषवादी सोच को हिला रही है। पुरुष वर्चस्व के बीच स्त्रियों की आज़ादी पर बहस भी चल रही है। मानवता के इस घोर संकट-काल में पुरुष को चाहिए कि वह अपने को पुरुष होने से पहले अपने को मनुष्य समझे और स्त्री को भी स्त्री मानने से पहले उसे मनुष्य माने और स्त्री की ज़रूरतों की मौलिकता को पूरी संवेदना के घनत्व और गहराई के साथ जाने। महिलाएँ पुरुष के नहीं बल्कि अपने अन्यायपूर्ण, अत्याचारी अतीत के विरुद्ध हैं, कारुणिक स्थिति के विरुद्ध हैं। उन्हें पुरुषों से नहीं बल्कि पुरुषों के सामन्तवादी और पूँजीवादी रवैये से मुक्ति चाहिए।

आज पुरुष रचनाकारों के साथ महिला रचनाकारों की उपस्थिति भी सक्रिय है। अपने ऊपर हो रहे शोषण को चुपचाप सहकर निष्क्रिय रहने के लिए अब स्त्रियाँ तैयार नहीं है। अर्थात् शोषण के विरुद्ध अपना सख्त विद्रोह प्रकट करने के लिए वे हिचकती नहीं। उसमें 'बेचारी दुख की मारी' वाला भाव नहीं बल्कि परिस्थितियों का आमना-सामना करके अपने हक के लिए आवाज़ उठाने की हिम्मत आ गयी है। समकालीन महिला लेखन में नारी चिन्तन के विभिन्न आयामों का वास्तविक अंकन उपलब्ध है। उसमें स्त्री अस्मिता और संघर्ष के विभिन्न पहलू ही मुख्य है और आदर्श स्त्री जीवन के विभिन्न रूपों की ओर संकेत भी है। स्त्री के आत्म की पहचान और अस्मिता के संघर्ष से पैदा हुए सवाल मुखरता से उठाये गये हैं। इस तलाश के दौरान महिला लेखन परम्परागत पुरुष वर्चस्व और आज भी अमिट रहे चिह्नों, रूपों पर भी प्रकाश डालता है। एक की प्रभुता हमेशा दूसरे की स्वाधीनता को कटघरे में खड़ा करती है। समकालीन महिला लेखन उन समस्याओं से जूझता है जिन समस्याओं से आज स्त्रियाँ गुजर रही हैं।

नारी परिवार का आधार होती है। नारी ही वह धुरी है जिस पर परिवार टिका रहता है। बदलते परिप्रेक्ष्य में पारिवारिक विघटन जारी है। इसके लिए पुरुष व स्त्री दोनों समान रूप से जिम्मेदार है। स्त्रीत्व के दमन के आधार पर न तो परिवार व्यवस्था सुदृढ़ हो सकती है और न ही परिवार की कीमत पर स्त्री उच्छृंखल नहीं बन सकती है। परिवार के टूटने का सबसे ज़्यादा दुष्प्रभाव बच्चों और वृद्ध-वृद्धाओं को झेलना पड़ता है। अपने देश के परिवार एवं परंपरा को

बचाये रखने की जिम्मेदारी स्त्री और पुरुष दोनों पर है और इसे हर हालत में बनाये रखना होगा।

स्त्री श्रम और स्त्री शोषण हमारी सामाजिक व्यवस्था की एक सच्चाई है। किन्तु स्त्री श्रम के महत्व को कहीं रेखांकित नहीं किया जाता, हर जगह वह अलक्ष्य और प्रायः अदृश्य रह जाता है। भारतीय इतिहास इसका गवाह है। पहले सतिप्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह, कन्या-शिशुओं की हत्या, पर्दा-प्रथा आदि अमानुषिक स्थितियों को स्त्री सहती रही तो आज भी वह बलात्कार, दहेज हत्या, तलाक और पारिवारिक हिंसाओं की शिकार हो रही है। अर्थात् वर्तमान सन्दर्भ में महिला सहभागिता के जितने भी सवाल उठते हैं इनके उत्तर इतिहास में ही कहीं छिपे रहते हैं।

निजी जीवन के समान, सामाजिक जीवन के सभी पक्षों, आयामों में भी स्त्री अपनी अमिट रूप अंकित करने लगी है। वह सजग नागरिक बनना चाहती है। पुरुष द्वारा दिशा-निर्देशित, राजनीति, कानून और व्यवस्था में पुरुष का प्रभुत्व ही अधिक है। ऐसी व्यवस्था में स्त्री शोषण की संभावनाएँ काफी हैं। समाज में स्त्री को आगे आने का मौका बहुत कम ही दिया गया, परोक्ष ढंग से स्त्री की दुनिया घर-परिवार तक सीमित रही। इस पर बहस होने लगी और आरक्षण के रूप में ही सही, उन्हें थोड़ी जगह मिलने लगी। महिला लेखिकाओं में अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी ने इन सभी मुद्दों पर अपनी लेखनी चलायी है। उनका रचना संसार विस्तृत है केवल नारी समस्याओं को ही नहीं बल्कि समाज की अन्य

समस्याओं जैसे वृद्धजनों की समस्या, हाशिएकृत समाज, विकलांग बच्चों की मानसिक और शारीरिक स्थिति, निराशा एवं मज़बूरी, अकेलापन आदि सामाजिक स्थितियों को भी इन लेखिकाओं ने अपनी लेखनी का आधार बनाया है।

एक रचना तभी अच्छी लगती है जब उसकी भाषा सशक्त होती है। भाषा के माध्यम से ही मानव एक दूसरे से अपने-अपने विचार व्यक्त करता है। अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी ने अपनी भाषा पर विशेष बल दिया है। उनकी भाषा सरल, बोधगम्य तथा भावप्रधान है, जिसकी वजह से इनकी रचनाओं को प्रत्येक मानसिक स्तर पर पात्र समझ सकते हैं। पात्र, घटनायें, भाषा सब उनके आस पास के ही है। इन लेखिकाओं की भाषा की एक खासियत यह है कि उन्होंने पढ़ा-सुना, भोगा हुआ अनुभव आदि सब को जोड़ कर अपनी भाषा की खूबसूरती और ताकत को बढ़ाया है। कुल मिलाकर इनकी रचनाओं में विषय की व्यापकता और और कथावस्तु की गहराई है, जो उनको अलग पहचान देती है।

संक्षेप में कहा जाए तो स्त्री का अनुभव पुरुष के अनुभव से भिन्न होता है। स्त्री का दुख पुरुष के लिए पराई चीज़ है क्योंकि अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति तभी संभव है जब अनुभवों की प्रत्यक्ष अनुभूति हो। बदलते जीवन परिदृश्य में आज के महिला लेखन ने अपनी ज़मीन तलाश ली है और यही कारण है कि सभी प्रकार की सामाजिक समस्याओं को वे पूरी जीवन्तता तथा मजबूती और शक्ति के साथ प्रस्तुत कर सकती है। अर्थात् आज की सामाजिक विसंगतियों ने जिस टूटन, घुटन और अंतःसंघर्ष को जन्म दिया है, उसका सीधा और सफल बयान करने में

लेखिकाएँ कामियाब रही हैं। अपने अस्तित्व, अपनी अस्मिता की तलाश से संबद्ध नारी को भी ये खोज रही हैं, और अपनी रचनाओं के ज़रिए व्यक्त भी कर रही है।

हिन्दी के इतने संपन्न महिला रचनाकारों में अनामिका, अलका सरावगी और महुआ माजी का नाम अत्यधिक प्रभावशाली है। इन महिला रचनाकारों का मुख्य रचना स्थल सिर्फ स्त्री जीवन नहीं है। उन्होंने समाज के अन्य पहलुओं को अनदेखा नहीं किया है। अर्थात् इन लेखिकाओं का लेखन स्त्री स्वातंत्र्य, स्त्री-अस्मिता, स्त्री शोषण इत्यादि विषयों में मात्र सीमित न रह कर सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, पारिस्थितिक एवं धार्मिक परिवेश को भी गंभीरता से लेने लगा है। इनमें गहन मानवीय संवेदना के साथ-साथ यथार्थ पर गहरी पकड़ भी है।